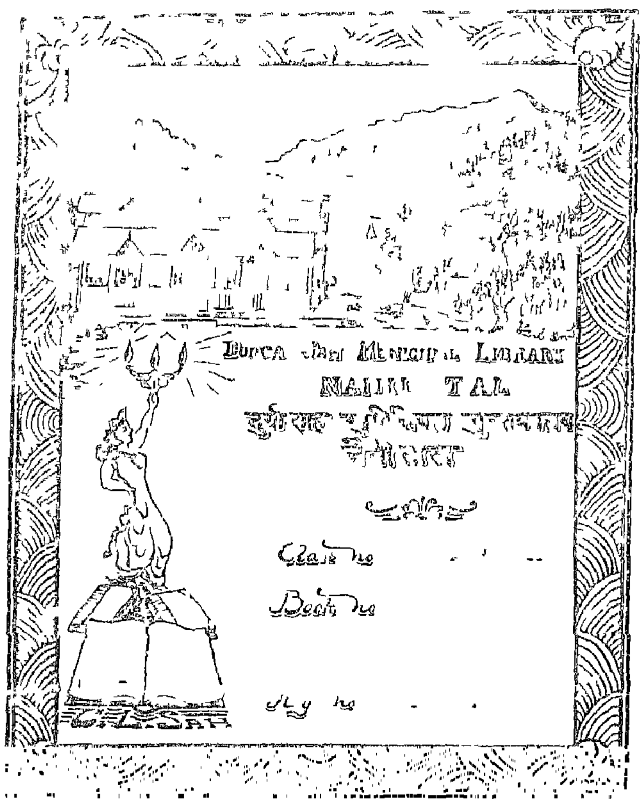


DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
Class No.
Book No.
My No.

श्वेतपद्मा

(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

लेखक

श्री सिद्धविनायक द्विवेदी

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

ज्ञानवापी, बनारस ।

मूल्य १॥।)

प्रकाशकः—
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
ज्ञानवापी, बनारस।

मुद्रकः—
श्यामलाल धवन
अनन्त प्रिंटिंग प्रेस, बनारस।

प्राक्कथन

आजकल उपन्यासों के लिखने की ऐसी परम्परा सी चल पड़ी है कि जब जिसके जो जी में आया, उसी को कथानक का स्वरूप देकर एक नवीन उपन्यास की रचना कर डाली। कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ ही समय पहले, उपन्यास सम्राट् श्री प्रेमचन्द के युग में, हिन्दी उपन्यास-कारों को उँगली में गिना जा सकता था किन्तु इधर तीन चार दशक वर्षों के भीतर ही उपन्यासकारों की संख्या में इस प्रकार वृद्धि हुई है जो पहले के अनुपात से सैकड़ों गुना अधिक है।

जहाँ लेखकों की वृद्धि अभिनन्दनीय है, वहीं एक प्रश्न हिन्दी उपन्यासकारों से पूछा जा रहा है कि क्या लोकरंजन के लिए जिस प्रकार कथोपकथन की सृष्टि की गयी है, वे समाज की नैतिक पृष्ठ भूमि को चट्टान की तरह अडिग बनाये रख सकेंगे। क्या सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ्य एवं संजीवनदायक कथानक पाठकों द्वारा सदैव ग्राह्य बना रहेगा? क्या गन्दे अश्लील एवं कुरुचिपूर्ण उपन्यास जो पढ़ते २ पाठक को नैतिक मूल्यों के स्तर से गिर जाने की प्रेरणा देते हैं, कभी किसी काल में अभिनन्दनीय हैं?

मेरे विचार से गन्दे एवं अश्लील साहित्य का प्रचार एक जघन्य अपराध है प्रायः हमारे बहुत से लेखक साथी पैसे के लोभ में पड़ कर आज कल गन्दे उपन्यासों की सृष्टि करने लगे हैं और अधिकांश प्रकाशक भी केवल पैसा कमाना अभीष्ट समझ कर नैतिक मूल्यों के स्थायी पतन को कोई महत्व नहीं देते। 'श्वेत पद्मा' कैसा उपन्यास है, इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही करेंगे किन्तु इसमें अश्लीलता आदि दोषों का कोई

समावेश नहीं है, यह मैं बलपूर्वक कह सकता हूँ। नारी के चरित्र चित्रण का प्रयास ही 'श्वेतपद्मा' है। अनेक त्रुटियों के बने रहने पर भी यदि 'श्वेतपद्मा' का चित्रण अश्लील न हो तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

अन्त में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस को धन्यवाद दूँगा। जिनकी सदाशयता ने सर्वदा हिन्दी साहित्य के चरणों में सुरुचि-सुगन्ध पूर्ण नव पुष्प समर्पित किये हैं।

बनारस
२१-१२-५४

सिद्धविनायक द्विवेदी

श्वेतपद्मा

१

श्रेष्ठ भारत-प्रदेश के हृदय में अरावली पर्वत के एक खण्ड पर श्रीवत्स साधु की कुटिया थी।

श्रीवत्स एक दिन नागरिक-जीवन को ठुकरा कर अपने साथ अपनी स्त्री एवं एकमात्र कन्या श्वेतपद्मा को लेकर कोलाहलपूर्ण नागरिक वातावरण से पृथक् हो गया। उसके जीवन में एक प्रश्न था कि क्या वह सत्-असत् के बीच अपने जीवन को दैवी-निधियों द्वारा सुसज्जित कर सकेगा? क्या वह ममता-रहित होकर विश्व वैचित्र्य के अनेक कुतूहलपूर्ण मायिक वातावरण को भेदन करने में समर्थ होगा? क्या उसे सतत् अतृप्त जीवन को एक बार ही आत्मानन्द से साक्षात्कार कराने में सफलता प्राप्त होगी?

कुछ भी हो, वह निर्जनता की घनी शान्ति में अपने आपको निमग्न कर देने के लिए व्यग्र था। इसी हेतु वृत्ताकार पहाड़ी की तरेटी में आकर उसने घास-फूस की एक झोपड़ी खड़ी कर दी। प्रकृति की देन के कारण उसके ऊँचे वास-स्थान के चरणों का सिञ्चन करती हुई एक झील शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति बाल-रवि-रश्मियों को स्पर्श कर चमका करती थी। श्रीवत्स हरित आम्र-वृक्षों के घने झुरमुट के नीचे बैठकर तरङ्गों के आलोड़न का दृश्य देखता हुआ अपने आप में खो जाता था। साधु श्रीवत्स धीरे-धीरे मानवीय जीवन से अपरिचित-सा बनने चला था। सच तो यह है, जीवन बिताने का वह कोई अर्थ न समझता था। जीवन कैसे भी बीते, उसे तो केवल जीवन-प्रवाह के साथ बहने में आनन्द आता था।

कभी-कभी श्रीवत्स के जीवन में सृष्टि-विनाश एवं जन्म-मरण की कुतूहलमय विभीषिका गहरे मनोभावों की पीड़ा के साथ उभर उठती थी। वह सोचने लगता—"चमकनेवाला यह क्रीड़ामय संसार एक

दिन अपने आप ही ओझल होगा। मुझे विवश होकर यह परिवर्तन स्वीकार करना पड़ेगा। यह हरित वन, स्वच्छ जल के मधुमय प्रपात, इठलाती हुई वायु, चमकता सूर्य एवं अमृतवर्षी श्री-द्युतिपूर्ण मोहक चाँद सब कुछ छोड़ जाना पड़ेगा। इतना ही नहीं इन सबके साथ एक जीवन की पगी हुई ममता भी छोड़ जानी होगी। फिर कहाँ जाना होगा? कैसा होगा वह अपरिचित देश जिसकी यात्रा प्रारम्भ होते ही बिलखते हुए सगे-स्वजनों का वियोग स्वीकार करना पड़ेगा? फिर मिलन की घड़ी कब आयेगी? प्राण-पखेरू अनन्त विश्व की परिखा के चारों ओर कब तक परिक्रमा करते रहेंगे? मिलन की चिर-उत्कण्ठित लालसा का शमन क्यों कर होगा? जन्म-जन्मान्तर की एक और असंख्य सुप्त एवं जागृत लालसाओं का उन्मूलन कैसे होगा? उभरे और छुपे हुए जीवन के रंगीले दृश्य कैसे भुलाये जा सकेंगे?"

साधु श्रीवत्स सांसारिक अनुभूतियों द्वारा जब-जब विह्वल हो उठता तब वह धारणा, ध्यान एवं समाधि आदि के द्वारा मन को शान्त करता था। उसने अपने आप को प्रकृति की गोद में पलने के लिए छोड़ दिया था। साथी के रूप में मन बहलाने के लिए उसकी पुत्री श्वेतपद्मा एवं पत्नी भर ही थीं।

कभी-कभी श्रीवत्स हाथ में कुदाल और फावड़ा लेकर पहाड़ी की घाटी में फल-फूल लगाने में तत्पर हो जाता था और तब वह बड़ा कठिन शारीरिक परिश्रम करता था। जब श्रम करते हुए उसकी सर्वाङ्ग नाड़ियां फड़कने लगती थीं और श्वास-प्रश्वास के दीर्घ व्यायाम से सारा शरीर श्रम-बिन्दुओं की बाढ़ में निमग्न हो जाता था, तब वह हांफते हुए अपनी पञ्चवर्षीया पुत्री के साथ खेलने लगता था। श्वेतपद्मा प्रकृति के वातावरण में अनेक रहस्यमय प्रश्नों की झड़ी लगा कर अपने साधु पिता को अपने साथ ही बहला देती थी। वह खिलते हुए फूलों जैसी सरल मुस्कराहट से पिता के हृदय में स्नेह-पाल झूलता देख कर, उसे प्राप्त करने की लालसा में पिता की गोद से जा चिपटती थी। तब साधु श्रीवत्स अपनी बालिका के साथ बच्चोंकी-सी सरलता में निमग्न होकर खेलने

लगता था। उसे प्यार करता था और परिपूर्ण सुख में गोते लगाता रहता था।

श्रीवत्स की कुटिया के चारों ओर एक घना फल-फूलों से लदा बगीचा था। उसी के सहारे इन तीनों प्राणियों का जीवन-निर्वाह होता था। साल में एक बार बसन्त के दिनों में उनकी झील के चारों ओर एक बड़ा-सा मेला लगता था और तब श्रीवत्स को कई धनिक व्यक्ति आकर सम्मानित करते थे और श्रीवत्स उनसे धन प्राप्त कर दान एवं यज्ञादि कर्मों में लगता था। एक पक्ष के लिए वह घाटी रमणीक नगर की भाँति कोलाहलपूर्ण हो जाती थी। श्रीवत्स लोक-संग्रहणीय कर्मों को अपनी कुटिया में बैठे ही बैठे कर डालता था। यही उसकी जीवन-चर्या थी।

साधु-संयमी जीवन व्यतीत करते हुए श्रीवत्स के जीवन के कई अमूल्य वर्ष समाप्त हो चुके थे। उसे अभ्यास-योग द्वारा शान्ति उपलब्ध हुई थी। उसके जीवन की विकट पहेलियाँ भी इसी जीवन में सुलझी थीं और इसी जीवन में भावनाओं के हलचल का क्रूर आवेग भी शान्त हुआ था। वह अपने-आप में ही रम रहा था।

श्रीवत्स के स्वभाव की छाप उसकी पत्नी और पुत्री के जीवन में भी लग चुकी थी। तीनों प्राणी की छोटी-सी गृहस्थी में मर्यादा एवं कर्तव्य का सुयोग अनुकरणीय था। उसकी पत्नी पति-परायणा थी और पुत्री श्वेतपद्मा माता-पिता की अनुगामिनी।

जीवन के बुदबुद क्षण बीत रहे थे। श्वेतपद्मा बढ़ते-बढ़ते पन्द्रह वर्ष की हो चुकी थी। अब श्रीवत्स के समस्या थी कि क्या वह जो अबतक निश्चिन्त रहा है, आगे भी निश्चिन्त रहे अथवा श्वेतपद्मा के लिए शान्ति-सौख्यमय जीवन बिताने का कोई आयोजन करे? आयोजन ही क्या हो सकता है? यही न, कि श्वेतपद्मा को किसी योग्य वर के साथ वैवाहिक बन्धन में बांध दिया जाय! किन्तु............क्या विवाह प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए आवश्यक है?

जब साधु श्रीवत्स अपनी एकमात्र सन्तान श्वेतपद्मा के भविष्य का चिन्तन करता हुआ घाटी में बैठा हुआ था, तभी उसने देखा कि श्वेत-

पद्मा हाथ में एक मुरझाया हुआ गुलाब का पुष्प लिये अपने पिता के समीप आकर खड़ी हो गयी। श्वेतपद्मा के नेत्र-कोर आँसुओं से भींगे थे। ज्ञात होता था, जैसे वह कुछ क्षण पूर्व रोती रही हो। उस दिन की सन्ध्या की भाँति ही श्वेतपद्मा का मुख घनी उदासी की छाया में म्लान पड़ चुका था। वह एक प्रश्नवाचक-सी साधु के सम्मुख खड़ी थी। मौन थी, किन्तु कुछ कहने को तत्पर होकर आयी थी। उसकी वाणी होंठों तक आकर जैसे पुनः गले के नीचे उतर जाती रही हो।

साधु श्रीवत्स को लड़की का इस प्रकार का अनमनापन अखरा। जिस पुत्री का मुख हँसते हुए फूल की मुस्कराहट को लज्जित करता था, उसके धूमिल और विषाद से गड़े मुख-दृश्य की कल्पना ने साधु को अशान्त कर दिया। साधु ने स्नेह-मिश्रित सान्त्वना को प्रदर्शित करते हुए कहा—"बेटी! आज उदास क्यों? क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें कुछ कहा है?"

"ऊँहू", सिर हिलाते हुए श्वेतपद्मा ने उत्तर दिया।

"तब फिर तुम्हारी उदासी का क्या कारण है?"

"बात यह है पिता जी! मेरा सब से अधिक सुकुमार सुन्दर और प्यारा फूल बिना भगवान की पूजा में चढ़े ही मुरझा गया। मैं किस प्रकार अधीर होकर उस कली का खिलना देख रही थी और कितने प्रयत्न के बाद उस अकेले पुष्प की रक्षा कर सकी थी, किन्तु आज अचानक दोपहर के झंझावात ने उसे मुरझा कर वृन्त से गिरा दिया। पिता जी! अब मैं क्या करूँ?"

श्वेतपद्मा पिता के सामने फूट-फूटकर रो पड़ी। श्रीवत्स ने अनुभव किया कि जैसे इस छोटी-सी साधारण घटना ने लड़की के अन्तर में कठोर चोट पहुँचायी हो, पर वह सहायता ही क्या कर सकता है!

पल भर सोचने के पश्चात् साधु ने श्वेतपद्मा को समझाना शुरू किया। वह बोला—"बेटी! खिलना, मुरझाना और टूटकर धूल में मिल जाना ही इस जगत का अप्रिय व्यापार है। तुम्हें उस फूल के प्रति अधिक ममता न रखनी चाहिए थी। तुम नहीं जानती कि जो कोई अपने

अन्तर में ममता को पालते पोसते हैं, वे ही इस कठोर संसार में दुःख के भागी बनते हैं। तुमने भूल की है।"

"कैसी भूल पिता जी?"

"जो ममता के साथ फूल पर आसक्ति बढ़ी, वही भूल हुई। नहीं देखती कि प्रत्येक दिन इस वन-उपवन में सैकड़ों फूल खिलते हैं, मुरझाते और झड़ जाते हैं; किन्तु और फूलों के लिए कब तुम रोयी और कहाँ तुम्हारे नेत्र आँसुओं से तर हुए? यही तो दुःख है, बेटी! जो असक्त और ममता रहित हैं, वे ही इस जग में सुख के भागी बनते हैं। जो विनाश और सृष्टि के द्वन्द्व से अलग रहते हैं, वे ही जीवन्मुक्त होते हैं। जो ममता और आसक्ति को अपनी हृदय-वाटिका में जड़ फैलाने देते हैं, वे अपनी आकांक्षाओं की अपूर्ति में रोते-बिलबिलाते हैं और छाती पीट-पीटकर दुःख की भट्टी में जलते हैं। इस हेतु बेटी! इस घटना को भूल जाओ, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यदि विचार ही करना है तो उस परम शक्ति की ओर अपने ध्यान को केन्द्रित करो, जिसके सकाश से फूल खिलते और मुरझाते हैं, जो फूलों की कलियों में रंगीन रस डालकर उन्हें सुन्दर और आकर्षक बनाती है और जो शक्ति को छिपाये हुए उस सुन्दरता और आकर्षण को छीन कर फूल को अस्तित्वहीन बना देती है।"

अकचका कर श्वेतपद्मा ने कहा—"पिता जी! आप कहते क्या हैं? खिलना और मुरझाना तो समझ में आता है किन्तु यह सब कौन करता है, यह समझ में नहीं आता। अगर वह परम शक्ति मुझे दीख पड़ती तो मैं पूछती कि इतना सुन्दर फूल खिलाकर फिर उसे मुरझा क्यों दिया? किसने उत्तप्त और निष्ठुर वायु के झोंकों को भेजा और किसने पुष्प को वृन्त से गिरा दिया? आह! मैं भगवान को मनचाहा फूल भी न चढ़ा सकी और यह भी न जान पायी कि फूल के इस प्रकार सुन्दर खिलने और निरर्थक ढंग से मुरझा कर झड़ जाने का प्रयोजन क्या है?"

"बेटी! इस अनन्त ब्रह्माण्ड में सृष्टि, स्थिति एवं नाश का स्वाभाविक

चक्र घूमता रहता है; किन्तु जिस शक्ति के द्वारा सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का चक्र घूमता है वह शक्ति निःसंग एवं निर्मम बनकर ही सारे व्यापार चलाती है; इसलिए हमारे लिए भी आवश्यक हो जाता है कि हम भी दर्शक और एक तटस्थ दर्शक बनकर ही सारे जीवन के व्यापारों में योग दें।"

पिता की कही हुई कुछ बातें तो आसानी से श्वेतपद्मा समझ जाती थी, किन्तु कुछ बातों को वह अधिक सोचकर भी न समझ पाती थी। उसका मस्तिष्क चकरा उठता था। अतः अधिक बातें न कर खिन्न मन से आश्रम के कुटी की ओर चली गयी, किन्तु इस घटना का एक व्यापक प्रभाव श्वेतपद्मा के विचार और मस्तिष्क में रह गया। क्रम-क्रम से समय व्यतीत होता चला गया और धीरे-से वे बसन्त के दिन और उसके पश्चात् मेलेवाले बसन्त के दिन आ गये। घाटी कोलाहलमय स्वरों में गूंज उठी। श्वेतपद्मा मेले की चहल-पहल के कारण प्रसन्न रहने लगी।

एक दिन श्वेतपद्मा आम्र वल्लरियों के घने कुञ्ज में छोटे-छोटे पौधों को पानी दे रही थी। वह अपने कार्य में इतनी तल्लीन थी कि उस समय उसे किसी बात का भय ही नहीं था। पास ही नीचे घाटी में कोलाहलपूर्ण झरने की वेगवती धारा चहल-पहल मचा कर अनेक यात्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। उस सामूहिक भीड़ से एक राज-पुरुष जो शिकारी वेष में वन के हिंसक पशुओं का आखेट करने निकला था, अपनी पीठ पर एक भालू के मृत शरीर को लिए झरने से कुछ दूर आगे बढ़ कर उन्हीं आम्र कुञ्जों की छाया में थकावट मिटाने के लिए बैठ गया। भालू के मृत शरीर को भूमि पर रखते ही उसे ज्ञात हुआ जैसे वह उस मृत-शरीर के बोझ से दबता-पिसता इतनी दूर आ सका है। वह उसी स्थान पर लेट गया और क्षण भर में ही गाढ़ी नींद के आवेग में खर्राटे मारने लगा।

वन की मदीली वायु सनसनाहट के स्वर को प्रतिध्वनित करती हुई बह रही थी। मृत भालू के बाल उस हवा में उड़ रहे थे। दूर से देखने पर

यही ज्ञात होता था, जैसे वह भालू गम्भीर निद्रा में निमग्न हो। उसी समय श्वेतपद्मा जो अनवरत परिश्रम के कारण थकी हुई झरने की ओर हाथ-पाँव धोने के लिए बढ़ी जा रही थी, उस राजपुरुष को भालू के द्वारा मारा जानकर एकाएक चीख पड़ी। राजपुरुष की निद्रा भंग हो गयी, किन्तु जब तक वह उठकर श्वेतपद्मा के सन्देह का निराकरण करे, तबतक श्वेतपद्मा भय के कारण भूमि में गिरकर संज्ञाशून्य हो गयी। वह राज-पुरुष शीघ्रता से श्वेतपद्मा के समीप तक आया और उसकी मूर्छा दूर करने के प्रयत्न में लग गया। थोड़ी ही देर में ठंडे पानी के छींटों से श्वेत-पद्मा की मूर्च्छा भंग हो गयी और जैसे ही उसके पलक खुले, उसने एक अपरिचित को अपनी सेवा-सुश्रूषा करते हुए पाया। वह राजपुरुष भी श्वेतपद्मा से कुछ दूर हटकर दूर खड़ा हो गया।

"आप कौन हैं ?" श्वेतपद्मा ने पूछते हुए प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

"मैं एक समीपवर्ती राज्य का राजकुमार हूँ।"

"और वह भालू ?"

श्वेतपद्मा की भावना को समझकर मुस्कराते हुए राज-पुरुष ने प्रत्युत्तर दिया—"वह हिंसक पशु मेरे द्वारा मारा गया है। आप सम्भ-वतः उसे जीता समझकर डर गयी थीं।"

"हाँ हाँ! डरने की तो क्या बात; मैं एक प्रकार से मर ही चुकी थी। किन्तु एक हिंसक पशु के शिकारी के द्वारा होश में आ गयी। यह भी एक विचित्र बात है। मैं समझ नहीं पाती कि आपके प्रति कृतज्ञता का प्रकाशन करूँ अथवा घृणा का, क्योंकि मैं उस हिंसक पशु में और आप में कोई असमानता नहीं पाती।"

इतना कहकर श्वेतपद्मा चुप हो गयी और कुछ सोचने लगी, किन्तु वह राजपुरुष कृतज्ञता प्रकाशन के बदले अपने आपको उसी हिंसक के तुल्य सुनकर कुछ हतप्रभ-सा हो गया। वास्तव में श्वेतपद्मा ने एक प्रकार से सहृदयता दिखाने के बदले में उसका अपमान कर डाला था। श्वेतपद्मा की बात राजपुरुष के हृदय में गड़ रही थी। वह श्वेतपद्मा से कुछ पूछना और कहना चाहता था, किन्तु श्वेतपद्मा को मौन और विचारों में गड़ी देखकर कुछ पूछने का साहस न कर पाता था।

अन्त में उस राजपुरुष का सुप्त अभिमान जाग्रत हो उठा। वह संयत किन्तु उद्वेग की भावना को स्पर्श करते हुए बोला—"आपने कृतज्ञता प्रकाशन के बदले मेरा अपमान किया है। उचित तो यह था आपके ऐसे अशोभन व्यवहार के लिए दण्ड दिया जाता।"

"ओ हो! आप राजकुमार हैं न! इसीलिए दण्ड विधान की बात आप सोच सकते हैं किन्तु आपने जो हिंसा का पाप-कर्म किया, उसके लिए भी आपको दण्ड स्वीकार करना चाहिए।"

"मुझे दण्ड क्यों? मेरा कर्म और धर्म दुष्ट को दण्ड और सज्जन की पूजा करने में है। मैंने स्वधर्म का पालन किया है। हिंसक पशुओं द्वारा सभी का जीवन-नाश होता है। इसलिए बहुतों की रक्षा करना और ऐसे हिंसक को, जो अन्य प्राणियों के जीवन की मृत्यु बन कर स्वयं का पालन करता है, मार डालना मेरा क्षत्रिय-सुलभ कार्य है।"

"किन्तु राजकुमार! मैं ऋषि-कन्या हूँ। मेरा धर्म सम्पूर्ण प्राणियों के साथ अहिंसक व्यवहार करने में है। मैं आप के किये उपकार का अपमान नहीं करती; किन्तु आपके कर्म की आलोचना अवश्य करती हूँ। क्या आपने जिस प्राणी का विनाश किया है, उसे जीवन-दान भी दे सकते हैं?"

यह विनाश और सृष्टि एक व्यापार है जो किसी परम शक्ति की प्रेरणा से चलता रहता है। मैंने स्वधर्म का पालन किया है। संभव है मेरे कर्म में आपको दोष दीख रहा हो, देवि! किन्तु इस प्रकार तो सभी कर्मों को परखने पर पता चलेगा कि वे कम या अधिक दोषमय हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि प्रज्वलित अग्नि के साथ धुएँ की कालिख भी रहती है।"

श्वेतपद्मा को इस बार राजकुमार की बात थोड़ी-बहुत जंच गई। उसने सोचा—"पिताजी भी यही कहते हैं कि जो विनाश और सृष्टि की भावना से ऊँचे उठ कर सत्कार्यों में लिप्त रहते हैं वे ही प्राणी जीवन्मुक्त होते हैं। संभव है, किसी का स्वधर्म दूसरे के लिए विधर्म पर-धर्म आदि जैसा हो।"

श्वेतपद्मा को निरुत्तर देख कर राजकुमार बोल उठा—"आप क्या सोच रही हैं, देवि?"

इस बार खिलखिला कर श्वेतपद्मा बोल उठी—"राजकुमार ! अवश्य ही आपके साथ व्यवहार करने में मुझसे त्रुटि हुई है। मैं आशा करती हूँ, आप मुझे क्षमा करेंगे।

श्वेतपद्मा के इस प्रत्युत्तर से राजकुमार प्रसन्न हो उठा। वह तनिक समीप आकर बोला—"आपका शुभ नाम क्या है ?"

"इसे पहले आप ही बताइए। हाँ, साथ ही पूरा-परिचय भी।

"मैं प्रेमनगर के राजा का पुत्र शक्तिवान हूँ। मृगया का मुझे बड़ा चाव है। इस बार मैं इसी बन की ओर चला आया। मेरे कुछ साथी व सेवक या तो पीछे छूट गये हैं अथवा फिर राजधानी पहुँच चुके होंगे। मैं अकेला ही इस भालू का पीछा कर रहा था। अन्त में वह मारा गया।"

श्वेतपद्मा को परिचय के साथ ही यह भी ज्ञात हो चला कि राजकुमार जाने के लिए अपनी तत्परता दिखला रहा है, इस हेतु वह अपना नाम बतलाती हुई बोली—"राजकुमार ! आप का शक्तिवान् नाम आपके पद के अनुकूल है। आप थके-से ज्ञात होते हैं। चलिए न ! पास ही मेरे ऋषि-पिता की एक कुटी है। यद्यपि हम लोग निर्धन हैं, तो भी जो कोई भूखा-प्यासा अथवा थका-मांदा मुसाफिर इधर से निकलता है, उसका हम आतिथ्यसत्कार करते हैं। क्यों ? आप चलेंगे तो !"

इच्छा न होते हुए भी शक्तिवान ऋषि-कन्या के आग्रह को न टाल सका। वह मृत भालू को अपनी पीठ पर लादे साधु श्रीवत्स की कुटिया के सामने जा खड़ा हुआ।

श्वेतपद्मा ने राजकुमार का परिचय बतलाते हुए अपने पिता से कहा—"यह आग्रह करने पर ही मेरी कुटी में आये हैं। पिता जी ! आज की घड़ी बड़ी शुभ है, जब कि एक राजपुरुष हम गरीबों की अतिथि-पूजा को स्वीकार कर रहा हो।"

श्रीवत्स ने मुस्करा कर कहा—"राजकुमार ! चिरायु हो।"

शक्तिवान् श्रीवत्स को दण्ड प्रणाम कर के वहीं चुपचाप बैठ गया। श्वेतपद्मा अपनी माता को नवीन अतिथि के आगमन का समाचार सुनाने चली गयी।

श्रीवत्स ने राजकुमार को थका जान आसन-वसन की शीघ्र ही व्यवस्था कर दी और तब वह बोला—"राजकुमार ! इस घास-फूस की झोपड़ी में आप के योग्य आतिथ्य के लिए कोई वस्तु नहीं। फिर भी थोड़े समय में फलाहार उपस्थित करूँगा। आप विराम करें।"

शक्तिवान जो सचमुच थका था, ऋषि श्रीवत्स की आज्ञा पाकर एक छोटी-सी कुटी में विराम करने लगा। पल भर ही में गाढ़ी निद्रा ने उसे आ घेरा। वह सोने लगा। इधर श्वेतपद्मा अपनी मां के साथ-साथ एक योग्य अतिथि के फलाहार की सामग्री जुटा कर बड़ी तल्लीनतापूर्वक उन्हें सजाने लगी। कुछ समय में ही सम्पूर्ण सामग्री तैयार हो गयी।

श्वेतपद्मा आगत अतिथि को बुलाने चली। तब तक साधु श्रीवत्स भी सायं सन्ध्या एवं उपासना से निश्चिन्त होकर अपने अतिथि की टोह में बाहर निकला।

श्वेतपद्मा सोते हुए राजकुमार को जगा लायी और पत्तलों में फलाहार सजा कर परोसने लगी। राजकुमार भूखा तो था ही, अतः रुचिपूर्वक भोजन कार्य में जुट गया। बीच-बीच में वह मधुर फलों की प्रशंसा भी करता जाता था।

साधु श्रीवत्स बोला—"राजकुमार ! हम तो जंगलों में रहनेवाले हैं और प्रकृति के अक्षय भण्डार से जो कुछ प्राप्त करते हैं, उसी से अपना भरण-पोषण करते हैं और इसीलिए हमारे अतिथियों को भी वही स्वीकार करना पड़ता है। राजकुमार ! आपको फलाहार रुचिकर तो है न ?"

"अवश्य, महात्मन ! ऐसे सात्विक भोजन द्वारा ही मनुष्य उद्वेगहीन जीवन व्यतीत कर सकता है। फिर भला मुझे क्यों न रुचिकर हो।"

श्वेतपद्मा बोली—"पिता जी ! कुश कण्टकों पर सोना और फलाहार करना तो त्यागी पुरुषों के लिए ही संभव है। राजकुमार शक्तिवान् किसी प्रकार आज की रात्रि व्यतीत कर रहे हैं। कहाँ वैभव की गोद में पले यह राजपुरुष और कहाँ यह वीतरागियोंका-सा भोजन-वसन ! किन्तु यह सब बातें भी समय-समय की हैं। राजकुमार को चाहिए कि वे अपने मन में किसी भान्ति कष्ट का अनुभव न करें।"

राजकुमार ने मुस्करा दिया। वह गद्‌गद् होकर बोला—"आज की रात और यह दुलार भरा आतिथ्य आजीवन स्मृति-पट पर अङ्कित रहेगा, इससे अधिक क्या कहूँ।"

साधु श्रीवत्स राजकुमार की विनम्रता पर मुग्ध था। श्वेतपद्मा एक अपरिचित अतिथि का सत्कार कर मन ही मन सन्तोष की श्वास ले रही थी। राजकुमार शक्तिवान साधु श्रीवत्स की मृदुता और श्वेतपद्मा की परिचर्या से विशेष प्रभावित था।

भोजन समाप्त होते ही साधु श्रीवत्स राजकुमार के साथ-साथ उसकी शयन-कुटी में जाकर तब तक बातें करता रहा, जब तक राजकुमार सो न गया।

दूसरे दिन प्रभात होते ही शक्तिवान प्रेमनगर की ओर चल पड़ा। साधु श्रीवत्स की सहायता से मृत भालू के बोझ को उठानेवाला एक सेवक भी मिल गया।

श्वेतपद्मा अतिथि के जाने पर कुछ सोचती रही और लौटनेवाले सेवक की प्रतीक्षा भी किये रही।

× × ×

दूसरे दिन—

राजकुमार शक्तिवान अपने महल में चुपचाप किन्तु उत्तेजित व्यग्रता के साथ सिर झुकाये बैठा था। रात्रि का पिछला प्रहर समाप्त होने चला था। कहीं-कहीं से प्रहरियों के पद-चाप की ध्वनि गूंज पड़ती थी, तब वह अपने सर्प-से छाये हुए काले केशों में हाथ की छिंगुली डाल कर उनसे पूछ बैठता था—"काले केश! तुम बुरे तो नहीं हो किन्तु तुम्हारी चपलता में विष भरा है। त्रस्त राष्ट्र तुम्हें सबलता का प्रतीक मानता है किन्तु तुम्हारी हलचल में तुफानी आवेग है। तुम विप्लवी भावना को उत्तेजित करनेवाले हो किन्तु तुम्हें स्थिर रखनेवाली नवीनता को भी स्थापित करना है। एक सुन्दर, सुघर एवं स्वस्थ नवीनता तो चाहिए ही, जो जीवनप्रद हो,—रमणीक हो। शाश्वत हो, किन्तु युग-धर्म के अनुकूल लचीलापन भी लिए हो।"

फिर शक्तिवान एक गम्भीर जम्हाई लेकर अपने आप ही कह उठा—"मैं नहीं कह सकता कि आज जो विश्व में आपत्तियों की बदली घिरी है, उसे हटाने में आज का नवयुवक कितना सफल होगा! देखता हूँ जातियों में अपनी झूठी शान का एक प्रमाद चढ़ आया है। एक सम्पूर्ण जाति या राष्ट्र दूसरी जाति या राष्ट्र के रक्त पर ही अपने उत्थान की नींव डाल रहा है। आज का नवयुवक जंगलीपन और बर्बरता की साधना का सहारा लेकर विश्व-विजय का डङ्का पीट रहा है। राष्ट्र के महान आदर्श का अधःपतन हो चुका है। नैतिकता की साख उठ रही है। विज्ञान महान राष्ट्रों का नाश रचा कर भी अपनी भौतिक देन से विश्व के प्राणियों को सुखी नहीं बना सका है। सर्वनाश का रोमाञ्चकारी दृश्य वैज्ञानिक के सन्मुख खड़ा-खड़ा उसे खिझा रहा है और वैज्ञानिक की कृति ने सर्वनाश करनेवाले महान पाप की कालिमा से उसकी अन्तरात्मा को कलुषित कर डाला है? क्या ऐसी विषम स्थिति में वैज्ञानिक की सारी रचना धूलिसात न हो जायगी! क्या पतन का भूकम्प आदर्शों की इमारतों को टिकने देगा?"

शक्तिवान अपने तूफ़ानी विचारों के ऊहापोह में अब तक बड़ी बुरी तरह उलझा पड़ा था। उसे तो एक आदर्श राज्य स्थापित करने की धुन थी। वह ऐसी सृष्टि चाहता था, जहाँ असमानता एवं अन्याय का बोल-बाला न हो, जहाँ शासक अथवा शासित में किसी के प्रति घृणा एवं द्वेष का प्रचार न हो, जहाँ धनी निर्धन का सङ्घर्ष न हो। कैसी होगी वह व्यवस्था जो उसकी मनचाही कामना को पूर्ण कर सके!

वह सोचता—"आज राष्ट्र की महान् विभूतियों के सत्प्रयत्न से भारत स्वतन्त्र है, फिर भी उसे अपनी आर्थिक एवं नैतिक निर्धनता को दूर करना है। इतना ही नहीं, आज की बर्बर दुनिया में जो नैतिक ग़रीबी आ गयी है, जिसके परिणामस्वरूप हिंसक युद्धों की विभीषिका में सारा संसार त्रस्त हो उठा है, उसे अपने नैतिक उपदेश द्वारा अहिंसा, विश्व-बन्धुत्व एवं मानवता की उपासना का शुभ सन्देश देना है। दुनियाँ के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक जो जंगलीपन एवं अमानुषिकता बढ़

रही है, उसे भारतवालों को एकदम हटा देना है। भारत के पास दैवी अस्त्र है सही, किन्तु दानवता का व्यापक प्रभाव राष्ट्र की आत्मा को घेरे हुए है। उलझनों पर उलझनें बढ़ती दीखती हैं। मनचाही रूपरेखा का निर्माण कैसे हो ?"

शक्तिवान प्राची में ऊषा की लालिमा देखकर अपने शयनागार से बाहर निकल आया। कोठी का द्वारपाल झुककर अभिवादन करता हुआ राजकुमार की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। राजकुमार द्वारपाल को देखते ही कह उठा—"द्वारपाल ! योगिराज को बुलाकर लाओ।"

द्वारपाल अपने स्थान पर दूसरे द्वारपाल को बिठलाता हुआ राजकुमार के अभिन्न मित्र योगिराज को बुलाने चला गया और इधर शक्तिवान शौच-स्नानादि कार्यों से निवृत्त होने चला।

कमरे में वापस लौटते ही योगीराज पर राजकुमार की दृष्टि पड़ी और वह बड़ी पीड़ा से कह उठा—"योगिराज ! राजाओं की स्वार्थ-लिप्सा एवं स्वेच्छाचार ने उनका नैतिक पतन कर डाला है। वे आज एक अंश में भी प्रजा के प्रतिनिधि नहीं रहे है। प्रजा का इस बात से विश्वास उठ चला है कि वे (राजा लोग) पुनः प्रजापालक होंगे। चारों ओर श्रेणी-युद्ध एवं शोषण-असमानता के विरुद्ध घोर विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। राज-पद की महत्ता कुचली हुई जीवन की अन्तिम सांस ले रही है। मैं शोषण की नींव पर खड़े किये गये इस राज-प्रासाद एवं अतुल वैभव से घबरा रहा हूँ। प्रजा की न्यायपूर्ण हुँकार से बड़े-बड़े सत्ताधारियों के सिंहासन उलट दिये गये हैं। यह है आज के नरेशों की स्थिति। मैं चाहता हूँ, प्रजा के घृणा एवं द्वेष का सजीव पुतला बनकर यह राज-वैभव एवं सुख न भोगूँ।"

"मेरे पूर्वजों की सत्ता का कीर्ति-स्तम्भ, न जाने कब, किस घड़ी ढह जाय। इससे अच्छा तो यह है कि आज से, इसी घड़ी से अपने पिता के अधिकारों का प्रतिनिधि बनकर मैं न रहूँ। चलूँ, सब कुछ त्याग कर एक अलग जीवन एक अलग संसार बसाऊँ और परम्परागत अधिकारों

की होली जलाकर नव-विधान द्वारा स्वतंत्र राष्ट्र की सेवा करूँ। क्यों योगीराज! आज की पुकार तो यही है न ?"

"ठीक है, राजकुमार! इस बात पर मैं सदैव प्रेरणा करता आया हूँ। और आगे भी मेरी जिस रूप में आवश्यकता समझें, मैं योग्य सेवा करने को तत्पर हूँ।"

"जीवन सहचर!" नेत्रों में आँसू भर शक्तिवान बोला—"तुम्हारी आवश्यकता तो जीवन के क्षण-क्षण में है। कैसी बातें करते हो तुम? कितनी बार तुमने इस रोते हृदय को हँसाया है, याद है? आज इस राज-महल से सदैव के लिए विदा लेने के पूर्व मैं तुमसे तुम्हें मांग रहा हूँ। चलो, दोनों मिलकर जीवन के मुक्त-पथ पर बढ़े। बोलो, चलोगे ?"

"अवश्य, राजकुमार! मैं तो स्वयं वायु की गति में बहता आया हूँ। तुम्हारी प्रीति-रीति ने प्रेम-पथ पर चुभनेवाली भिन्नताओं को विनष्ट कर डाला है। मैं भी परम स्वतन्त्र हूँ। चलोगे तो चलूँगा, बढ़ोगे तो बढ़ूँगा, अन्यथा अपनी जैसी तो कर ही रहा हूँ।"

योगिराज अपने स्थान से बढ़ता हुआ राजकुमार के गले में बाँह डाल कर तीक्ष्ण दृष्टि से राजकुमार को निरखते हुए बोला—"शक्तिवान्! जीवन-पथ पर समत्व एवं उपकारादि भावना लेकर बढ़ना तो चाहते हो किन्तु क्या माता-पिता एवं स्वजन-सगों के प्रति दायित्व का भी विचार कर डाला है ?"

"कोई दायित्व ही नहीं है, योगिराज! अपने कर्म और प्रारब्ध का भोग सब भोग रहे हैं। स्वयं को फंसाने के लिए अपनी ही भावना का फन्दा हम नहीं कसना चाहते। जो कुछ मनुष्य का वास्तविक दायित्व है और जिस दायित्व को निभाने का हम गर्व करना चाहते हैं, वह तो अभी दूर है। उसी दायित्व पर ही मेरा सम्पूर्ण व्यापार केन्द्रित होगा।"

"तब ठीक है, चलने की कब रही ?"

"आज ही मध्याह्न से पूर्व।"

"कहाँ चलना होगा ?"

"जहाँ भाग्य ले चलेगा।"

"कुछ विचार भी तो करना चाहिए था।"

"कुछ नहीं। इस महल की चहारदीवारी से कहीं दूर हट कर विचार करेंगे, किन्तु, ध्यान रहे योगिराज! यह बात पाँचवें कान में न पड़ने पावें, अन्यथा अनर्थ होगा। पिताजी की ओर से बड़ी-बड़ी बाधाएँ उठ खड़ी होंगी?"

योगिराज राजकुमार में इतना शीघ्र परिवर्तन देख कर कुछ क्षण सोचता रहा और तब गम्भीरतापूर्वक बोला—"राजकुमार! कञ्चन की परख करते समय काँसे और पीतल के तुल्य उसका भाव न परखना। तुम्हें अपने पद के आकर्षण से लेकर राज-पद की समस्त विभूति त्याग देनी होगी और इस त्याग के संग्रह स्वरूप वैराग्य भी स्वीकार करना पड़ेगा। सोच लो, राजकुमार! तुममें इतना बल है न? यदि मतवाले भोग की राजसी वासनाओं का दमन न कर सके तो पीछे पछताना पड़ेगा। यह क्षणिक आवेश का त्याग तुम्हें विद्रूप हँसी में चिढ़ायेगा।

संसार आकर्षक है। भोग-सामग्रियों में जीव को अनन्त काल तक अन्धकार में भटकना पड़ता है। मोह-निद्रा का पतित दृश्य नेत्रों में झूलता रहता है। अन्तर-चक्षु न जाने कितने जन्मान्तरों के लिए बन्द हो जाते हैं। जीव अपने जीवन की साधना में असफल और कर्म-बन्धन की प्रगाढ़-रज्जु में जन्मान्तरों के हेतु बन्दी हो जाता है। इतना व्यापक किन्तु अशुभकारी भोग का पथ है, फिर भी प्रकृति से ही जीव उसमें फिसलता है। नारी पुरुष के प्रत्येक आकर्षण को छीन कर अपना प्रभाव सबसे अधिक रखती है।"

राजकुमार शक्तिवान! जिस पथ पर बढ़ रहे हो, उसमें काँटे हैं; चुभन और कसक है, घबराहट और पीड़ा है किन्तु निश्चय ही सत्यव्रती के हेतु गम्भीर आत्म-सन्तोष एवं अननुभूत सुख है।

एक ओर मादक प्याला छलक रहा है, कर्णकुहरों में मधुर सङ्गीत के मुखरन की अनन्त तरंगे समायी जा रही हैं। कोई मीठी-मीठी मोहक वाणी में कहता है, 'मदीले! पीले यह प्याला! कितना छलकता-सा कितना मद से शराबोर है। साकी केवल इस बार पिला रहा है, फिर पिलाये न

पिलावे ! क्या पता, फिर उसकी सुराही में वह मतवाली हाला हो न हो, जो किसी को बेहोश और बदमस्त कर सकती है !

दूसरी ओर शुष्क जीवन-पथ है किन्तु आत्म-सन्तोष के रस से भरा पूरा। काँटों में, जङ्गल में, नदियों के कछार या वन-उपवन में जहाँ भी निवास है, आत्मानन्द ही परिपूर्णता है। प्रियतम के जलवा-ए-दीदार के नक्शे के देखने को हर गली में जाना है; पर जहाँ की खाक छानना है, वहाँ बहार ही बहार है। बसन्त है, पतझड़ नहीं।"

योगिराज दृष्टि पसार कर राजकुमार को देखता हुआ शून्य-सा हो गया शक्तिवान योगिराज को विश्वास दिलाता हुआ बोला—"दोस्त ! गली-गली की खाक छानेंगे किन्तु शासक तो बनेंगे ही नहीं। कल्याण-पथ पर अग्रसर होने और जीवन की महत्ता को लोक-अनुकरणीय कर्मों में उत्सर्ग कर देने से श्रेष्ठ और क्या हो सकता है। हाँ मेरे जीवन के दृष्टि-कोण में असीम-प्रेम की उपासना की एक धारा तो अवश्य होगी जो हृदय के सूखते हुए कोनों में नवजीवन-रस का सञ्चार करेगी। जीने के लिए मैं उस अवस्था में भी सुख से जी लूँगा।

योगिराज ! तर्क-वितर्क छोड़ो। एक मित्र की भाँति अपने सहारे से मुझे सबल बना दो। शेष तो जो होना है, वही होगा।"

योगिराज ने शक्तिवान् का भली-भाँति हृदय टटोल कर अपनी स्वीकृति भी प्रकट कर दी। शक्तिवान योगिराज को हृदय से लगाता हुआ बोल उठा, "मेरे साथी, कृतज्ञ रहूँगा तुम्हारा ! तुम्हारे सहवास ने मेरा सपना भङ्ग कर दिया। भोग की अनैसर्गिकता का पाप मेरी दृष्टि में नाचने लगा। राजैश्वर्य के भोग शोषण की दुर्गन्धि से सड़े कोढ़ की भाँति घिनौने हो गये हैं। इस हेतु प्रसन्नता है कि उनके प्रति सुअवसर में ही घृणा हो गयी। तुमने मुझे जीवन और उसकी उपयोगिता के विचार करने का विशाल दृष्टिकोण मेरे समक्ष प्रस्तुत किया। मैं भाग्य शाली हूँ, ऐसा मित्र पाकर ?"

राजकुमार शक्तिवान् के नेत्र से कृतज्ञता की बूँदें झर पड़ीं।

योगिराज शक्तिवान को हृदय से लगाते हुए बोला—"इसकी क्या

आवश्यकता है ? हम दोनों एक-दूसरे को पाकर धन्य हैं। अच्छा लो, चलते हैं। तुम मेरे वास-स्थान पर आ जाना। वहीं से अन्तिम बार हम दोनों जन्म-भूमि को प्रणाम कर महान् यात्रा के लिए अग्रसर होंगे।"

योगिराज अपने वास-स्थान की ओर लौट चला और शक्तिवान अपनी यात्रा के आयोजन में लग गया।

× × ×

कितने दिन बीत चुके थे, कितनी रातें गुजरी थीं। शक्तिवान और योगिराज जल के प्रवाह की भाँति जीवन-पथ पर बढ़ रहे थे। दोनों जीवन से बेलौस थे, बेपरवाह थे। नित नयी खोज, नित नयी यात्रा का निरन्तर वेग चालू रहता था। योगिराज चाहता था कि उसका मित्र विज्ञापन-हीन जीवन की ओर सदैव आकृष्ट रहे। शक्तिवान् चाहता था कि योगिराज उसका पथ-प्रदर्शक बना रहे। दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता थी, दोनों एक दूसरे के अभिन्न प्रेम के पूरक थे।

अनेक वन-प्रान्तरों को पार करने के पश्चात् दोनों एक नगर की बाह्य सीमा में आकर टिक गये। शक्तिवान ने सुना था कि वह सम्पन्न नगर एक अनिन्द्य सुन्दरी का क्रीड़ा-स्थल है। वह उस काल की सर्वश्रेष्ठ गायिका है। वह वैभवशालिनी है। नगर के महान् सामन्त उसके द्वार पर प्रेम की भीख माँगने जाया करते हैं। वह जब किसी को अपनी उचटती दृष्टि डाल कर देखती है, तब उस भाग्यशाली की चर्चा सर्वश्रेष्ठी के रूप में प्रचलित हो जाती है।

उस दिन जब योगिराज एवं शक्तिवान् एक उपवन में टिक रहे थे। तभी ऐसी चर्चा सुनने में आयी। उपवन का माली अपनी कन्या से सुरभित पुष्प-हारों के गूंथने की बात कर रहा था। माली की कन्या उल्लास-पूर्वक कह रही थी—"बाबा ! आज ऐसी माला गूथूंगी कि वर्ष भर की कमाई अपने आप मिल जायगी।"

शक्तिवान इन बातों को भेद भरी भाषा में समझता हुआ, किसी प्रकार माली की कन्या से मिलकर पूछने की लाग बैठा रहा था। योगिराज

खाने-पीने की टोह में प्रबन्धक की तरह सारा भार सम्भाले अपनी धुन में मस्त था।

शक्तिवान को एक तरकीब सूझी। वह बड़ी सुन्दर माला गूंथना जानता था। इस हेतु माली की पुत्री को बुलाते हुए शक्तिवान ने कहा—"अपने नगर की उर्वशी के लिए एक हार मुझसे गुंथा कर ले जाओ। संभवतः तुम उपहार प्राप्त कर सको।"

माली अपनी पुत्री के साथ ही यह बात सुनकर प्रसन्न हो गया। वह कह उठा—"परदेशी! तुम श्रीमन्त की सन्तान ज्ञात होते हो, फिर भी जब तुम्हारा आग्रह है, इस हेतु एक पुष्प-माल गूंथ ही दो। शायद तुम्हारे प्रसाद से हमारा परिवार पुरस्कृत हो सके।"

माली तुरन्त शक्तिवान के हेतु उचित वास-स्थान का प्रबन्ध करने निकला। पास ही योगिराज से भेंट हो गयी। योगिराज के परामर्श से खान-पान आदि का भी समुचित प्रबन्ध हो गया।

इधर शक्तिवान माली की कन्या से उलझा हुआ, चुन-चुनकर कुसुमों की पाँखुड़ियों में काम-कला की मादक अनुभूतियों को छिपाये जा रहा था। माली की कन्या विभिन्न कुसुमों को अलग-अलग चुनते हुए शक्तिवान् की बड़ी सहायक सिद्ध हो रही थी।

शक्तिवान् ने उस माली-कन्या से प्रश्न किया—"क्यों भद्रे! तुम्हारा नाम क्या है?"

"मुझे प्रेमलतिका कहते हैं, परदेशी!"

"और उस नगर-उर्वशी का क्या नाम है?"

"मधुगन्धा।"

"कैसी है वह?"

शक्तिवान क्षण भर के लिए प्रेमलतिका को देखने लग गया।

प्रेमलतिका विस्मय-विमुग्ध-सी बोली—"अरे, परदेशी! तुम उसका प्रभाव नहीं जानते? वह सौन्दर्य की देवी बन कर आकुल नेत्रों में समा जाती है। बड़े-बड़े सामन्त एवं श्रेष्ठी उसके दर्शन से कृतकृत्य हो जाते हैं।"

"अच्छा, ऐसी है वह !"

शक्तिवान आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से प्रेमलतिका को देखने लगा। किन्तु प्रेमलतिका बोल उठी—"हाँ-हाँ, वह वह ऐसी ही है। आज तक, हाँ आज तक वह किसी को प्रेम-दृष्टि से नहीं देख सकी। वह पुरुष को अपने आकर्षण का क्षुद्र पुतला समझती है। वह नारीत्व का सम्मोहन चलाकर बड़े-बड़े नैतिकों एवं निष्ठावानों को व्यग्र कर देती और पुरुषत्व को कुचले फूल की तरह मसल कर सम्मोहक हँसी में मुस्कराती रहती है। वह सजीव माया है, दिव्याङ्गना उर्वशी है, सरस्वती की मादकवीणा की स्वर-लहरियों की मधुर-तान है। वह आकर्षण है !"

शक्तिवान बड़े ध्यानपूर्वक, प्रेमलतिका द्वारा वर्णित मधुगन्धा की विशेषताओं को सुन रहा था। प्रेमलतिका का अन्तिम वाक्य सुन कर शक्तिवान बोला—"उसकी कुछ और विशेषताएँ बताओ, प्रेमलतिका के इस वर्णन में बड़ा रस आता है।"

प्रेमलतिका ने देखा—"शक्तिवान बातों-बातों में एक सुन्दर हार को बहुत अंशों में गूंथ चुका था, इस हेतु वह भी प्रसन्न होती हुई बोली—"क्या बताऊँ परदेशी ! मधुगन्धा पुरुष जाति का महान् आकर्षण बन कर इस सृष्टि में अवतरित हुई है। जिसने उसे एक बार भी देखा है, वह दुबारा दर्शन करने की लालसा लिये ही लौटा है। वह पसीजती नहीं, ऐसी पाषाण-हृदया है। कितने हृदय बन-बिगड़ चुके, कितनी बस्तियाँ वीरान हो गयीं पर वह कुछ न समझी। किसी एक छोटी-सी बात के लिए भी कृतज्ञ न हुई। सबके सब प्रयत्न व्यर्थ ! वह अभी तक पुरुष शक्तियों से पराभूत नहीं हुई। नारीत्व के आकर्षण का उद्दण्ड अहङ्कार उसके जीवन में समाया हुआ है। वह किसी को कुछ नहीं समझती।"

एकाएक शक्तिवान का हृदय स्वाभिमान से भर उठा, पर वह अपनी भावना को छिपाते हुए बोला—"प्रेमलतिका ! अभी वह दुर्दमनीय पुरुष के प्रेम-वियोग में तड़प नहीं पाई है, इसी हेतु वह पुरुष का ठीक-ठीक मूल्य नहीं आँक सकी। एक और कारण यह भी है कि उसका द्वार प्रेमियों की भीड़ से भरा रहता है। तिरस्कृत पुरुषत्व उसके द्वार में चील की भान्ति मड़राया करता है। वह क्या समझे, पुरुष रत्न का मूल्य !"

माथे पर बल डालते हुए शक्तिवान पुनः बोला—"मुझे क्या करना है! लो प्रेमलतिका, यह हार तुम तुम मधुगन्धा ही को समर्पित करना। उसे देने के पूर्व तक यह स्वच्छ गुलाब-जल से सिंचे वस्त्र के नीचे ढका रहे।"

शक्तिवान अपने स्थान पर से उठ कर खड़ा हो गया। प्रेमलतिका से बोला—"प्रेमलतिका ! लो मैं चला। मेरे मित्र मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे?"

प्रेमलतिका कृतज्ञता से दबी हुई बोली—"परदेशी कुँवर साहब ! मैंने अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए कष्ट पहुंचाया है, आप क्षमा करेंगे।"

शक्तिवान जैसे ही वास-स्थान पर लौटा योगिराज अपने आसन पर बैठे मुस्करा रहे थे। एक चुटकी लेते हुए योगिराज ने कहा—"मैं तो यह समझा था कि राजकुमार भी मधुगन्धा के दर्शन के लिए प्रस्थान कर चुके होंगे।"

"नहीं मित्र ! सच बात यह है कि मेरे हृदय में मधुगन्धा के मान-मर्दन की बात समा गयी है। सुना है, वह पुरुषों को अपनी इच्छा का खिलौना समझती है।"

"यह तो सच है, किन्तु उसे परास्त करना कोई बच्चों का खेल नहीं। वह सौन्दर्य एवं समृद्धि से परिपूर्ण है, विद्या एवं कला की खान है। उसकी रुन-झुन पायल की झङ्कारों से मदमाती हृदय-वीणा झङ्कृत हो उठती है। उसके अधिकार में दैवी सम्मोहन शक्ति है। पुरुष को पराजित कर देना पलक मारने जैसी बात है। सोच समझ कर आगे बढ़ना।"

शक्तिवान मुस्करा कर चुप हो गया। योगिराज ने मित्र को चुप होते देख कहना शुरू किया—"जो पुरुष मधुगन्धा का मान मर्दन करेगा, अन्त में उसी की उपासना में मधुगन्धा का जीवन व्यतीत होगा। मधुगन्धा अवश्य ही एक श्रेष्ठ नारी है, हाँ उसके अनेक जन्मों के न जाने किन अशुभ संस्कारों ने गायिका के उदर से जन्म लेने को विवश किया। खैर, यह तो ईश्वरेच्छा है।"

राजकुमार सब कुछ सुनता हुआ भी चुप ही रहा। योगिराज राजकुमार

की भावनाओं को कुरेद कर जानना चाहता था कि मधुगन्धा के विषय में वह क्या सोच रहा है ? किन्तु शक्तिवान के मौन ने योगिराज के प्रयत्न को असफल कर दिया।

दिन भर वे दोनों स्नान, भोजन, आराम आदि कार्यों में लगे रहे। सन्ध्या होते ही जब वे दोनों नगर की परिक्रमा करने जा रहे थे, तभी प्रेमलतिका आ गयी। बड़ी कृतज्ञ दृष्टि से देखती हुई वह बोली—"आज मुझे एक सौ स्वर्णमुद्राएँ उपहार स्वरूप मिली हैं। मेरा हार सर्वश्रेष्ठ निकला।"

राजकुमार अपनी सफलता पर मुस्कराने लगा,—किन्तु प्रसन्नता को छिपाते हुए बोला—"मधुगन्धा ने हारों को स्वयं चुना था। या किसी सखी-सहेली ने चुन कर उसे दिया था।"

"नहीं, परदेशी ! वह मालिनों को कतार में खड़ी करके सबके हारों में दृष्टि डालती हुई दोबार शुरु से अन्त तक घूम आयी और तीसरी बार उसने मेरे पास आकर हार छीन लिया और अपने सेवक को सौ सुवर्ण-मुद्राएँ देने की आज्ञा देकर वह मुझसे बोली—"तुम्हारा नाम क्या है, मालिन ?"

"प्रेमलतिका, भद्रे !"

वह क्षण भर मेरे पास खड़ी रही—मुझे देखती रही। तत्पश्चात् बोली—"प्रेमलतिका ! यह हार तुम्हीं ने गूंथा है ?"

"नहीं, भद्रे ! मेरे यहाँ एक अतिथि आये हैं।"

"अतिथि !" वह आश्चर्य मुद्रा में मुझको देखने लगी और पुनः बोली—"वे तुम्हारे कौन हैं ?"

मैंने हँस कर कहा—"वे मेरे अतिथि हैं, देवी !"

"प्रेमलतिका की बातों को सुनकर शक्तिवान् और योगिराज दोनों हँसने लगे, पर वह स्वभावतः कहने लगी, "परदेशी अतिथि ! इतना ही नहीं, उसने तुम्हें आग्रहपूर्वक बुलाया है। बोलो, चलोगे ?"

"नहीं, प्रेमलतिका ! हम लोग किसी के घर-द्वार नहीं आते जाते। हमें उससे क्या-लेना देना है।"

"तो मैं 'न' कह दूँगी।"

"हाँ ठीक है" कहकर दोनों नगर-दर्शन के लिए चल पड़े। योगिराज ने कहा—"विचित्र है तुम्हारी प्रकृति राजकुमार! एक ओर तुम अपने वंश, पद-मर्यादा को छिपाते चलते हो और दूसरी ओर सर्वश्रेष्ठ कलाएँ प्रदर्शित करते हो। क्या बात है यह, मेरी समझ में नहीं आता!"

शक्तिवान् बोला—"कला-प्रदर्शन सम्मान का कार्य है। मैंने मधुगन्धा के विषय में बहुत-सी बातें सुनी हैं। अभी थोड़े दिन ही हुए वह हमारे प्रेमनगर में मेरी अनुजा के विवाहोत्सव में धूम मचाने के लिए आयी थी। बड़ों ने बतलाया था कि वह केवल श्रेष्ठ गायिका ही नहीं, कला और विद्या की सुन्दर पारखी भी है।

"ज्ञात होता है, तुम पूर्व परिचित हो। तभी तुमने माली की कन्या से शीघ्र ही मेल-जोल पैदा कर डाला। माली की कन्या की सहायता के बहाने क्या कोई तुम्हारा स्वयं का स्वार्थ तो मधुगन्धा से नहीं है? शक्तिवान्! सच बोलो, बात तो कुछ भेदभरी-सी ज्ञात होती है।"

शक्तिवान् मुस्कराते हुए बोला—"मित्र! सारी भेद की बातें अपने आप खुल जायँगी। तुम निश्चिन्त रह कर सबकुछ देखते चलो। मुझे कुतूहलमय जीवन बिताने में ही आनन्द आता है।"

फिर दोनों चल पड़े। बतों-बातों में ही न जाने कितना समय व्यतीत हो गया, पर वे दोनों चलते ही रहे। नगर के दूसरे छोर पर उन्हें स्वर्ण-कलश एवं तोरण-बन्दनवारों से युक्त एक मन्दिर दिखलायी पड़ा, जहाँ वीणा के लय की मधुर मूर्च्छना के साथ सङ्गीत की कल्लोलिनी तरङ्ग-माला मुखरित हो रही थी। मन्दिर के द्वार पर आकर दोनों ठिठक गये। प्रहरी ने पूछा, "क्या चाहते हो? मन्दिर प्रवेश ??"

शक्तिवान् ने स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया,—किन्तु प्रहरी बोला "अभी पुरुष-प्रवेश निषेध है।"

"क्यों? क्या कोई रमणी इस समय पूजन कर रही है!"

"अवश्य! मधुगन्धा को नहीं जानते?"

"नाम तो सुना है, वही न जो सर्वश्रेष्ठ गायिका है।"

"हाँ-हाँ, वही। बात यह है कि घड़ी भर रात्रि बीते वह यहाँ पूजन करने आती हैं और प्रहर पश्चात् बाहर निकलती हैं। यह मन्दिर उन्हीं का है।"

"यदि मैं उनके बाहर आने तक प्रतीक्षा करूँ तो?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

प्रहरी उत्तर देकर द्वार पर टलहने लगा। इधर योगिराज ने आग्रह-पूर्वक राजकुमार से कहा—"लो, कुछ समय तक रुक ही न जाओ। देव-दर्शन के साथ ही मधुगन्धा के भी दर्शन हो जावेंगे।"

"मैं तो उत्सुक नहीं। हाँ, तुम्हारी कामना यदि ऐसी ही है तो रुक जाने में कोई अड़चन भी नहीं।" अस्तु—

पाषाण के एक विशाल चबूतरे पर दोनों जम गये, मन्दिर के बाहर निकलती हुई मादक स्वर-लहरियां जैसे दोनों को अपनी ओर खींचे लिये जा रही थीं। योगिराज कीर्तन की मोहक कला पर बेसुध-सा मस्त हुआ झूम रहा था। न जाने दोनों कब तक इसी प्रकार विस्मृति में ठगे-से बैठे रहे। सहसा वीणा के अन्तिम तार झनझना कर बन्द हो गये और झांझ मृदङ्ग के मीठे एवं गम्भीर घोष भी प्रशान्त वातावरण में समा गये। आरती के पश्चात् नूपुरों एवं कटि-किङ्किणियों की मधुर झङ्कार के साथ मधु-गन्धा प्रवेश द्वार पर पहुँची। योगिराज ने प्रथम दृष्टि ही में अनुभव किया, जैसे आकाश से सजीव चन्द्र उतर आया हो!

प्रवेश-द्वार के सम्मुख रत्नजटित हेमयान आकर खड़ा हो गया। मधुगन्धा चारों ओर दृष्टि दौड़ाती हुई हेमयान पर आरूढ़ हो गयी। सेविकाएँ भी उसके पार्श्व में बैठ गयीं।

हेमयान चल पड़ा। रात्रि का घोर अन्धकार हेमयान से डरता हुआ जैसे दूर भागता जा रहा था और मृग-शावक जैसी चञ्चल दृष्टि फैलाती हुई मधुगन्धा शून्य में चारों ओर देख रही थी।

हेमयान धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उसी स्थान से निकला जहाँ योगिराज शक्तिवान के साथ ही ठहरा हुआ था। मधुगन्धा की प्रथम दृष्टि योगिराज पर, पश्चात् राजकुमार पर जाकर पल भर के लिए अटक गयी। राजकुमार

मधुगन्धा को एक दृष्टि से देख कर अन्यत्र देखने लगा। मधुगन्धा को राजकुमार की उपेक्षा ने तिरस्कृत जैसा कर दिया। वह अपनी प्रिय सेविका से बोली—"क्यों, शशि! तू जानती है, मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर ये कौन आगन्तुक हैं।"

"मुझे ज्ञान नहीं, देवि! किन्तु वस्त्र-विन्यास से यही ज्ञात होता है कि वे इस नगरी के निवासी नहीं।"

हेमयान कुछ दूर तक और चलता रहा और मधुगन्धा जाने क्या-क्या सोचती रही। एकाएक वह अपनी सेविका शशि को हेमयान से उतरने का आदेश देती हुई बोली—"शशि! पता लगा कर आना कि वे दोनों आगन्तुक कौन हैं?"

शशि हेमयान से उतर कर उन दोनों के पास पहुँची, जहाँ से वे चलने को उद्यत हो रहे थे।

"भद्र! क्या आप इस नगर के लिए नवआगन्तुक हैं?" वह बोली।

योगिराज ने शीघ्र ही उत्तर दिया—"अवश्य भद्रे! किन्तु तुम्हारे इस भाँति पूछने का प्रयोजन क्या?"

यही कि आप दोनों वेश-विन्यास से कुछ कुतूहल उत्पन्न करनेवाले ज्ञात होते हैं!"

"कैसा कुतूहल, भद्रे!"

"यह मैं नहीं जानती, किन्तु……?"

"किन्तु तो प्रकट ही करना होगा।" शक्तिवान बल देकर बोला।

वह कुछ असमञ्जस में पड़ गयी किन्तु रहस्य को उद्देश को अन्तर ही में छिपाती हुई बोली—"किन्तु का अर्थ, आप दोनों का परिचय प्राप्त करना।"

"किन्तु का यह रहस्य नहीं। तुम उसे जहर के घूँट की भाँति अप्रिय समझ कर कण्ठ के नीचे उतार चुकी हो। पहले उसे प्रकट करो, तब हम अपना परिचय देंगे।" योगिराज उत्तर देकर उसके मुँह की ओर देखने लगा।

वह कुछ झेंपती हुई बोली—"भद्र! नगर की सर्वश्रेष्ठ उर्वशी के हृदय

में आप लोगों के परिचय प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई है, इसी हेतु मैं आपसे प्रार्थना करूँगी कि अपने परिचय से मुझे अवगत कराइये।"

"अच्छा! यह बात है?" व्यङ्ग से मुस्कराता हुआ योगिराज बोला, "मेरे मित्र से ज्ञातव्य बातों को जान सकती हो। वे ही तुम्हें बताएँगे।"

योगिराज चुप हो गया। मधुगन्धा की वह चतुर सेविका शशि, राजकुमार की ओर आकर्षित होते हुए बोली—"आप ही प्रत्युत्तर दें न! एक महिला के प्रति अवहेलना का भाव दिखलाना व्यावहारिक नहीं है।"

राजकुमार मुस्करा पड़ा। वह बोला—"हम अपना क्या परिचय दें, भद्रे! हम दोनों बेघरबार और उजड़े हुए परदेशी हैं। हमारी पितृभूमि यहाँ से दूर है। हम दोनों एक दूसरे के परस्पर मित्र हैं। कुतूहलवश इस ओर हमलोग भी नगर-दर्शन के लिए आये थे। अन्त में नगर के छोर तक पहुँच गये। बस, यही बात है।"

शशि बोली—"मेरी स्वामिनी इस परिचय से सन्तुष्ट न होंगी।"

"किन्तु दुःख है, हम सारा परिचय दे चुके।" राजकुमार बोला।

वह दोनों को तीक्ष्ण दृष्टि से देखती हुई चली।

योगिराज ने ठहाका मारते हुए कहा—"राजकुमार! तुम जितना चाहे अपने को छिपाओ किन्तु तुम्हारी रूप-लावण्यता पर मुग्ध होनेवाली रमणियां पतिंगे की भाँति मंडराया ही करेंगी। यह दोष तुम्हारा नहीं, तुम्हारे रूप का है।"

राजकुमार शक्तिवान कुछ गम्भीर होते बोला—"मित्र! तुम्हारा कहना यथार्थ है। रूप की मदिरा की बेहोशी में जघन्य पाप होते हैं। रूप के नाम पर लाखों व्यक्तियों के जीवन की हत्या होती है। रूप की उपासना का भूत मृत्यु के मुख में जाते-जाते भी नहीं उतरता। तुम जानते नहीं, रूप मद में मतवाली मधुगन्धा सम्पूर्ण नगरवासियों को पतन के आकर्षक गर्त में छोड़कर न जाने कितना अनर्थ कर चुकी है। मैं, यदि संभव हुआ तो मधुगन्धा को उसके पापों का प्रायश्चित करते देखूंगा।"

सहसा शक्तिवान के स्मृति पट पर साधु श्रीवत्स का आश्रम उभर

आया। अतिथि सत्कार करती हुई श्वेतपद्मा उसके नेत्र-दोलों पर झूलने लगी। वह मन ही मन कह उठा—"एक वह रूप है, जिसके पावन-दर्शन से हृदय प्रसन्न हो जाता है। दूसरा रूप मधुगन्धा का है, जिसकी वासना का प्रेत जीवन के शुभ कर्मों को पराजित कर नर्क-द्वार में ढकेल देता है।"

राजकुमार की शून्यता में योगिराज को उदासी की गन्ध मिली। वह जीवन के प्रारम्भ ही से प्रपञ्चहीन एवं आदर्श-सेवी व्यक्ति होने के कारण, क्षणिक उपहास के अतिरिक्त प्रत्येक समय अपने मित्र की गति-विधि पर कठोर दृष्टि रखता था। वह इसी हेतु राजकुमार को सावधान करता हुआ बोला—"राजकुमार! भोग एवं ऐश्वर्य की चिता पर एक नर्तकी के प्रेम का प्रासाद न खड़ा करना, अन्यथा पतनोन्मुखी जीवन लेकर कुछ न कर सकोगे।"

"उफ, मित्र! तुम हृदय के कितने भीरू हो। तुम्हें मुझ पर भी अविश्वास होने लगता है, क्या कहूँ।"

"कहोगे क्या, राजकुमार! मैं जानता हूँ कि पतित वासना के रंगीले दृश्य अपने दुखद-प्रभाव से जानकार को भी असावधान कर देते हैं। कहीं ऐसा न हो, तुम आकर्षणों के फन्दे में फँस जाओ और अपने चरित्र की उज्वल चादर पर कलङ्क की कालिमा पोत दो।

"यह असंभव है, योगिराज! प्रेम के ताने-बाने में मेरी चादर न जाने कब की बुनी जा चुकी। मैं पतित वासना की तृप्ति का जल कभी नहीं चाहता, भले ही जीवन आकर्षणों से घिरा रहे।"

राजकुमार के प्रत्युत्तर से योगिराज का बोझ उतर-सा गया। वह अपने मन को सन्तुष्ट करते हुए बोला—"भला सोचो तो! राजैश्वर्य से बढ़कर तुम्हें कौन-सा सुख प्राप्त होगा? जब उसी पर से हृदय हट गया, तब सुलझने के लिए और उलझनें क्यों बढ़ायी जायँ।"

राजकुमार मुस्करा पड़ा। वह बोला—"मैं नहीं जानता कि मधुगन्धा में भी कोई आकर्षण है और यदि हो भी, तो भी उसका प्रभाव मेरे जीवन पर नहीं पड़ सकता किन्तु तुम्हें आश्चर्य होगा कि तब भी मुझे मधुगन्धा की आवश्यकता रहेगी।"

"आवश्यकता ? क्या कहते हो, राजकुमार ! यही तो उलझन है जिसे तुम जड़ से उखाड़ फेंक देने के स्थान पर हरा-भरा रखना चाहते हो। मुझे तुम्हारी तर्क-युक्तियाँ असंगतिपूर्ण ज्ञात होती हैं। भला ! मधुगन्धा भी कोई आवश्यकता बन सकती है ?"

"यही तो तुम्हें दिखाना है। वह जादू क्या है जो शीश पर चढ़ कर न बोले। तनिक धैर्य धारण करो। मैं जीवन-संग्राम जम कर लड़ूँगा और क्षीर-नीर की भाँति पाप-पुण्य को अलग-अलग दिखलाऊँगा। आज तुम्हें जिस मधुगन्धा के आकर्षण का भय है, कल उसी का चिन्तन न करने लगना !"

"छिः क्या कहते हो, शक्तिवान् !"

योगिराज का हृदय आत्म-परिहास की भावी आशङ्का से कांप उठा। वह मन ही मन बोला—"क्या मधुगन्धा एक दिन इतनी धन्य बनेगी कि उसका अनिवार्य चिन्तन पाप न माना जाय ?"

प्रत्यक्ष में योगिराज बोला—"न जाने क्यों, मधुगन्धा के परिवर्तन पर मुझे विश्वास नहीं होता। वह अपना पाप व्यवसाय कैसे छोड़ देगी ?"

"इसका जवाब भविष्य देगा।" राजकुमार अकुलाकर बोल उठा। मधुगन्धा की चर्चा समाप्त हो गयी।

धीरे-धीरे अर्द्ध रात्रि की शून्य बेला में दोनों विश्राम-स्थल पर आकर विश्राम करने लगे।

× × ×

मधुगन्धा अपने रङ्गमहल में बैठी हुई दासी शशि की प्रतीक्षा कर रही थी। मन्दिर से लौटे हुए पर्याप्त समय व्यतीत हो चुका था। वह उस परदेशी की बात सोच रही थी, जो राजकुमार शक्तिवान जैसा लगा था। मधुगन्धा सोचती थी—"वह महलों के सुख को त्याग कर इस भाँति अलक्षित क्यों विचरण करेंगे।"

अतीत स्मृतियों का एक जाल-सा जीवन पट पर उभर आया। वह पीड़ा की मधुर-मधुर कसकन में सोचने लगी, "हाय ! ऐसे ही रंगीले वे दिन थे। बसन्त की हरीतिमा वृक्षों की नव-कोंपलों के साथ प्रत्येक शाख को

पल्लवित किये हुए इठला-सी रही थी। सम्पूर्ण प्रकृति मादक झोंकों को खाकर उन्मादिनी-सी पिया-मिलन की प्रतीक्षा में भ्रमित हो रही थी। हर शाख और हर गुल में, गुच्छे-गुच्छे में, अधखिली कलियों की आँख-मिचौनी में कोई झांक रहा था। लताएँ नृत्य करती हुई प्रेम के झोंके खाकर एक दूसरे का आलिङ्गन कर रही थीं।

मैं प्रमोदकक्ष में बैठी हुई हरित वन की फुलवारी देख रही थी।

तभी वह चाँद का टुकड़ा इठलाता और चारों ओर मधु बिखेरता हुआ खिली कलियों को चुनने लगा था। वनमाली ने अभ्यर्थना करते हुए आकर कहा था---देव ! कोमल हाथों से सुमन-कन्टकों के चुभने के कारण रक्त बह रहा है। मैं अपराधी हूँ, मेरा कार्य मुझे करने दिया जाय। यह तो मेरी सेवाओं का उपहास है।"

क्षण भर शक्तिवान के स्वरूप को ध्यान करते हुए पुनः अपने आप से ही कहने लगी---"प्रत्युत्तर में मुस्करा कर वह स्वरूप-पुञ्ज बोला था, "माली ! पुष्प और कन्टक एक ही जनक-वृक्ष के अनिवार्य परिणाम हैं। पुष्प चयन करते समय काँटों की चुभन को स्वीकार ही करना होगा।"

"हाय रे ! कितना सरल दर्शन है, किन्तु अर्थ-गाम्भीर्य कितना परिपूर्ण ?" हाँ, वह पुनः अपनी भावनाओं में बहक चली।

वह सोचने लगी---"मैं किसी भाँति प्रमोद-कक्ष के उन्मुक्त झरोखों में खड़ी होकर उस सरस स्वरूप का सौन्दर्य पानकर रही थी। सहसा उसकी घूमती हुई दृष्टि मुझसे टकरा गयी। कब तक वह मुझे और मैं उसे देखती रही ? वह सहसा अपनी दृष्टि नीची कर चलने लगा। मैं निर्लज्ज-सी टकटकी लगाये तब तक देखती रही, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हुआ।"

"उसके पश्चात् ?"

"जब मैं देव-दर्शन के लिए मन्दिर पहुँची, वह अपना पूजन समाप्त कर लौटने वाला था। मैं भगवान के द्वार पर खड़ी जैसे उसी की याचना कर रही थी, और जैसे भगवान को मुझ पर दया आयी हो। उसने एक निर्माल्य उठाकर देने के लिए हाथ बढ़ाया, मैंने अपना आँचल पसार दिया।

वह निर्माल्य को आँचल की झोली पर डालते हुए बाहर निकला और भृत्यों की भीड़ के साथ दृष्टि पथ से ओझल हो गया। आज भी वह निर्माल्य कंजूस के धन की भाँति कोषागार में संग्रहीत है।"

किसी खटके ने पल भर के हेतु उसका ध्यान विचलित कर दिया। वह उठ कर अपनी दासी शशि की राह देखने लगी, किन्तु राजकुमार की स्मृति ने पुनः विह्वल कर दिया। वह प्रेमलतिका के भाग्य को मन ही मन सराहने लगी। उसकी विचारधारा बोल उठी—"हो न हो, वह इस नगर में आया हो, और एक अपरिचित की भाँति प्रेमलतिका के उद्यान में रहने लगा हो। हो न हो, प्रेमलतिका ने जो पुष्प-हार, आज समर्पित किया है, उसका बनानेवाला वही राजकुमार हो। मैंने भी उचित ही किया है, जो मूल्यवान पुष्प-हार को भगवान की भेंट चढ़ा आयी हूँ। कल वह निर्माल्य प्रसाद के रूप में मिल जायगा, किन्तु..................।

वह उठकर टहलने लगी। दूसरी दासी आयी और बोली—"धनी एवं श्रेष्ठ नागरिक वर्ग आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

झल्लायी मनःस्थिति में मधुगन्धा बोली—"उनसे कह दो, वे आज चले जायँ। मैं अस्वस्थ हूँ, किसी से भेंट न करूँगी।"

वह दासी चली गयी और तब आशा की नवीन किरण की भाँति शशि आ उपस्थित हुई। वह बोली—"देवि! वे अपना परिचय नहीं देते।"

"क्या कहते हैं, वे?" आतुरता में मधुगन्धा ने प्रश्न किया।

"वे कहते हैं, हम दोनों बेघर-बार, उजड़े और परदेशी हैं।"

"बस इतना ही?"

"हाँ भद्रे, केवल इतना।"

"तू ने उन्हें देखा तो होगा।"

"अवश्य देवि। वे देवदूतों की भाँति सरल, समर्थ एवं स्वरूपवान दिखते हैं। उनमें से एक तो अजीब मनोमोहक है, किन्तु वह अपने को छिपाये, दृष्टि पसार कर देखता भी नहीं। उसकी वाणी मधुर एवं ओजपूर्ण लगती है।"

मधुगन्धा निराशा-सी अपने पर्यङ्क पर जाकर बैठ गयी। वह कुछ

भूली हुई-सी शशि की बातों को सोचने लगी—"वे देवदूतों की भाँति.................ओजपूर्ण लगती है !"

वह कुछ सोचती रही। पश्चात् सङ्कल्प के साथ बोल उठी—"जाओ शशि ! भोजनादि से निवृत्त होओ। मैं दोनों को खोज लूंगी। हाँ कल प्रातःकाल होते ही प्रेमलतिका को बुलवाना। मैं उसके उद्यान में छिपकर जाऊँगी।"

स्वामिनी का आदेश पाकर शशि चली गयी और मधुगन्धा जीवन की एक घटना पर बार-बार विचार करने लगी।

दूसरे दिन प्रभात में जब शशि अपनी स्वामिनी के पास आकर उपस्थित हुई, उसने मधुगन्धा में आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा। अन्य दिवसों की भाँति आज मधुगन्धा विकसित नवकलिका की भाँति न तो मुस्करा ही रही थी और न उसका सरस सौन्दर्य ही आकर्षक था। वह अलसायी दृष्टि में, एक भेद, एक थकावट और एक प्रकार की निर्जीवता व्यक्त कर रही थी। इतना सब कुछ होने पर भी शौच स्नानादि चर्या से निवृत्त हो चुकी थी। वह व्याकुल-सी कह उठी—"चलो शशि ! हमलोग अंधेरे मुँह ही प्रेमलतिका के उद्यान में पहुँच जायँ।"

"हिमयान की आवश्यकता होगी क्या ?" दासी ने प्रश्न किया।

"नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, पांव पयादे ही चलूंगी।"

ऊषा की प्रथम अरुण रेखा के निकलते ही मधुगन्धा दासी शशि के साथ प्रेमलतिका के उद्यान में पहुँच कर टहलने लगी। योगिराज अरुणोदय के पूर्व ही शौच स्नानादि से निवृत्त हो चुका था। इस समय वह प्राणायाम की क्रिया में तन्मय था।

मधुगन्धा योगिराज के प्रशान्त एवं तेजस्वी स्वरूप को देख कर विस्मय विमुग्ध हो उठी। वह मन ही मन बोली—"क्यों न ये पुरुष निर्मम और निरुपाधि अवस्था में स्थित रहें। वे अचिन्तनीय की चिन्तना में ही जीवन का सार पा चुके हैं।"

दूसरे ही क्षण योगिराज उसकी मानस-दृष्टि-पटल पर से लुप्त हो गया।

उसकी चञ्चल दृष्टि शक्तिवान को खोजने लगी। उसका मन न जाने किन भावनाओं के उहापोह में लिप्त हो गया।

राजकुमार शक्तिवान अब तक निद्रा मग्न था। प्रभात की मधुर वायु की थपकियों में उसका मन कहीं पुण्य-लोकों को देख रहा था। मुख पर मधुर हँसी अङ्कित थी।

योगिराज पक्षियों के कलरव में सचेत हो गया और दिन चढ़ता देख राजकुमार को छींटे मार कर जगाने लगा। अँगड़ाई लेता हुआ राजकुमार झटपट उठ कर बैठ गया और अपने सम्मुख मित्र को देख कुछ लज्जित किन्तु मुस्कराता हुआ बोला—"एक मधुर स्वप्न के सुहावने दृश्यों में मैं न जाने कहाँ विचरण कर रहा था!"

"चलो जग पड़े, ठीक ही हुआ। अभी-अभी प्रेमलतिका तुम्हें खोजती हुई यहाँ तक आयी थी।"

राजकुमार शौचादि से निवृत्त होने ज्यों ही चला, एक वृक्ष की ओर से निकलकर मधुगन्धा खड़ी हो गयी और अभिवादन करती हुई बोली—"राजपुत्र चिरायु हों!"

राजकुमार तत्क्षण मुस्कराता हुआ बोल उठा—अभिवादन है, भद्रे! क्या मैं तुम्हारी उपस्थिति का कारण जान सकता हूँ?"

"अवश्य, राजपुत्र! मैं दर्शनों की लालायित थी, इसी हेतु उपस्थित हुई हूँ।"

"मेरे अहोभाग्य! जो मधुगन्धा को अपनी प्रतीक्षा मैं चञ्चल देख रहा हूँ।"

शक्तिवान मधुगन्धा को योगिराज के समीप आसन देकर बैठने का आग्रह करते हुए बोला! "भद्रे! कुछ समय मेरे मित्र के साथ व्यतीत करो। मैं यथा शीघ्र लौटता हूँ।"

शक्तिवान तो गया, किन्तु योगिराज कुछ असमञ्जस में पड़ गया। दोनों एक-दूसरे के पार्श्व में बैठे हुए भी मौन थे। मधुगन्धाको यह स्थिति अखरी। अन्त में वह मौन भङ्ग करते हुए बोल उठी—"आप लोगों का इस प्रकार गोपनीय जीवन व्यतीत करना कुछ रहस्य-सा ज्ञात होता है।

"रहस्य तो कुछ नहीं, भद्रे ! हो सकता है, तुम्हारा अनुमान ठीक न हो ।"

"किन्तु अलक्षित विचरण करना आप लोगों के स्वभावानुकूल तो नहीं ज्ञात होता ।"

योगिराज मधुगन्धा के तर्क पर मुसकुरा पड़ा, किन्तु बोला—"श्रेष्ठ सुन्दरी ! राजकुमार इस प्रकार विचरण करने का कोई प्रत्युत्तर दे सकें और उससे तुम्हें सन्तोष हो तो ठीक है, मैं अधिक कुछ नहीं जानता ।"

मधुगन्धा मनुष्य स्वभाव का बहुत सुन्दर विश्लेषण कर लेती थी। वह सचमुच योगिराज के उत्तर से सन्तुष्ट न हुई किन्तु इस विषय में मौन रही।

योगिराज ने प्रश्न किया—"क्या तुम्हारा और राजकुमार का पूर्व परिचय रहा है ?"

"निकट से तो कुछ नहीं किन्तु मैं अवश्य राजकुमार को कुछ वर्षों से जानती हूँ ।"

"सचमुच मधुगन्धा ! राजकुमार भाग्यशाली हैं ।"

"क्यों, उनके भाग्य पर आपको ईर्षा होती है !"मधुगन्धा मुस्करा उठी।

"इसलिए, कि राजकुमार का आकर्षण तुम्हें यहाँ तक पांव पयादे खींच लाया है !"

"तो यह कौन बड़ी बात है ?"

"क्यों नहीं ! रूपगर्विता मधुगन्धा ! तुम स्वयं इसका निर्णय कर सकती हो—क्या तुम अपने उन पागल-प्रेमियों के हेतु भी इतना कष्ट उठा सकती हो, जो सर्वदा तुम्हारे भ्रु-विलास पर भँवरे की तरह मंडराया करते हैं ? क्या तुम्हें उन पर भी कभी दया आती है ? कितनी उपेक्षा का व्यवहार तुम्हारे द्वारा होता है, कभी यह भी सोचा है ?"

"आवश्यकता नहीं योगिराज ! वे अपनी वासना पूर्ति के लिए मेरी उपेक्षा सहन करते हैं। मैं उनकी ओर क्यों सदय बनूं जब मैं जानती हूँ कि वे मेरे रूप-शिखा पर मुग्ध होकर जलते हैं ?"

"और इसी कारण यदि तुम्हारे साथ भी उपेक्षा का व्यवहार हो, तो

तुम्हें उस परहृदय को छोटा न करना चाहिए ! क्या मैं कह सकता हूँ कि शक्तिवान की रूप-राशि पर ही तुम्हारी उत्कट वासना भड़क उठी है। मायाविनी वासना का कपट-पाश सदैव भयानक सिद्ध हुआ है ।"

मधुगन्धा के पांव तले की भूमि धंस-सी गयी। तिरस्कार की चोट से मन ही मन तिलमिला कर भी वह उफ् न कर सकी। उसका हृदय योगिराज की बातों से कांप उठा।

योगिराज ने शीघ्र ही ताड़ लिया कि उसकी बात मधुगन्धा के हृदय में चोटकर गयी पर वह तनिक भी लज्जित न हुआ। उलटे बल देकर बोला—"मधुगन्धा ! पछताना पड़ेगा। मैं तुम्हें परामर्श दूँगा कि राजकुमार के आकर्षण में सोच समझ कर फंसना।"

मधुगन्धा इस बार क्रुद्ध सर्पिणी-सी फुफकार उठी—"मैं बढ़े हुए पांव को पीछे नहीं लौटा सकती योगिराज !"

वह उठकर टहलने लगी। हृदय में एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ। उसने योगिराज को अपने प्रेम-पथ पर चुभते हुए शूल की भाँति अनुभव किया। उसके होंठ अपने आप ही फड़क उठे। वह मन ही मन प्रतिज्ञा करती हुई बोली—"ठहरो योगिराज ! तुमने मेरा अपमान किया है। मैं तुम्हें कुचलकर छोड़ूंगी।"

क्षण ही भर में मधुगन्धा का हृदय विद्रोह से भर उठा। वह पागल की तरह योगिराज के पतन की भूमिका सोचने लगी। उसके भावों को पढ़ते हुए योगिराज बोला—"मेरी स्पष्टवादिता के लिए क्षमा करना, भद्रे ! मैंने तुम्हारे समक्ष नग्न-सत्य प्रकट किया है। उचित समझ पड़े तो मेरी बात पर ध्यान देना।"

मधुगन्धा चोट खाये हुए भी, नारी स्वभाव के रहस्यमय परिधान में सारी भावनाओं को छिपा कर मुस्करा उठी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं और प्रकट में कृतज्ञता प्रकाशित करती हुई बोली, "योगिराज ! आप सत्य के उपासक हैं। आपने यथार्थ भाषण किया है। मैं अनुगृहीत हूँ।"

वह उठकर प्रेमलतिका को बुलाने के बहाने योगिराज से दूर हट गयी।

योगिराज भी निश्चिन्तता का अनुभव करते हुए शास्त्रों के अध्ययन में लग गया। तब तक राजकुमार भी लौट कर आ गया।

राजकुमार की दृष्टि स्वयं मधुगन्धा की खोज करने लगी। एकान्त में खड़ी मधुगन्धा राजकुमार को अपनी ओर बुलाने में कृतकार्य हुई। शक्तिवान उसके समीप आकर खड़ा हो गया और बोला—"मधुगन्धा! बोलो! मैं तुम्हारा मनोरञ्जन कैसे कर सकता हूँ?"

"अपने अनुपम दर्शन से"।

"और कुछ?"

"केवल एक बात!"

"तो फिर कहो न!" राजकुमार मधुगन्धा के मुख की ओर देखने लगा।

वह बोली—"एक बार मेरे गृह तक पधारें।"

"बस यही असमर्थता है, भद्रे! उस दिन तुम्हारी सेविका को भी निराश होकर जाना पड़ा था।"

मधुगन्धा हाथ मल कर रह गयी परन्तु निराश न हुई। उसने दूसरा अस्त्र उठाया। वह बोली—"मैं आपके दर्शन से अनुगृहीत हूँ किन्तु प्रार्थना है कि भविष्य में भी क्षण भर के मिलन से वञ्चित न रह सकूँ।"

"नहीं भद्रे! आगन्तुक का सम्मान करना धर्म हो जाता है। भला, तुम्हें, मिलने से वञ्चित कैसे रख सकता हूँ।"

मधुगन्धा की चिन्ता का भार उतर-सा गया। वह अन्तिम बार अभिवादन करती हुई बोली—"राजपुत्र! जाने की अनुमति चाहती हूँ। कृपया दृष्टि बनी रहे।"

राजकुमार प्रसन्न हृदय से मधुगन्धा को विदा कर अपने वास-स्थल में लौट आया।

× × × ×

राजकुमार शक्तिवान और योगिराज को उक्त नगर में वास करते हुए केवल एक ही पक्ष व्यतीत हुआ, किन्तु वे नगर के धनी एवं सामन्त वर्ग की चर्चा के विषय बन गये थे। मधुगन्धा के समस्त प्रेमियों को राज-

कुमार शक्तिवान के असाधारण मोहक स्वरूप से ईर्षा-सी हो चली थी। वे समझते थे कि उनकी एक मात्र प्रेमिका मधुगन्धा के हृदय में राजकुमार की प्रबल चाह उत्पन्न हो चुकी है।

'केवल राजकुमार से उन्हें ईर्षा थी' बात इतने ही पर समाप्त नहीं होती थी; वरन् उन्हें तो राजकुमार का नगर के समीप निवास करना भी खल रहा था। इन प्रेमियों से साधारण सम्भाषण का नाता भी मधुगन्धा ने तोड़ दिया था। वे उसके द्वार तक अपनी सम्पत्ति नष्ट करने और उसे भी नर्क के घोर ज्वलन-कुण्ड में पतित बनाने के हेतु आते थे। मधुगन्धा को ऐसे धन से और अपने प्रेमियों के मूल्यवान् उपहारों से घृणा हो चुकी थी। अपने भ्रमर-प्रेमियों के मुख से अपने स्वरूप की प्रशंसा सुनते सुनते वह ऊब चुकी थी। शक्तिवान के आकर्षण के सामने समस्त प्रेमियों का वासनामय निन्दित प्रेम उसकी दृष्टि से उतर चुका था।

रूप-शक्ति एवं धन-मद से मोहित क्षीण व्यक्तियों की अन्तिम अभिलाषा मधुगन्धा के रूप एवं प्रेम की उपासना थी। इसी में उन्हें जीवन की सार्थकता का बोध हो रहा था किन्तु मधुगन्धा उनकी इच्छा के विपरीत बह रही थी। एक दिन वह झल्ला उठी और अपने धनी-मानी प्रेमियों से बोली—"मैं सङ्गीत के अतिरिक्त किसी की कोई सेवा नहीं कर सकती। जो कुत्सित इच्छाओं की पूर्ति चाहते हैं, उन्हें तो पूर्ण रूप से निराश हो जाना ही उचित है।"

वह प्रेमियों की टोली से उठ कर अपने एकान्त रङ्गमहल में जाकर शून्य हो गयी और प्रतीक्षा में जीवन स्वाहा करने वाले प्रेमी सिर धुन कर पछताते हुए चल पड़े। अपमान की ठोकर से उनका हृदय तक फट चुका था किन्तु वासना के उन्माद में स्वाभिमान भी सदा के लिए सो चुका था। वे अलग-अलग अपने मस्तिष्क में उक्त बीमारी की औषधि एवं उपचार पर विचार कर रहे थे। उन प्रेमियों में से एक सामन्त आँसू भर कर बोला—"छिः वासना और तेरा कुसंस्कार!"

दूसरा बोला—"आँसू ढुलकाने से क्या होता है।"

तीसरा बोला—"स्त्रियों का मुक्त प्रेम उनके हृदय में भय उत्पन्न किये बिना प्राप्त कर सकना असम्भव है।"

चौथा बोला—"ठीक कहते हो जी, जो अपनी बाग-डोर उनके हाथों सौंपता है, उसे वे ठुकरा कर चली जाती हैं।

पाँचवा बोला—"तुम तो उन स्त्रियों की बात करते हो, जो गृहिणी है किन्तु मधुगन्धा अपने को आकर्षक खिलौना-सा प्रकट कर दूसरे को खिलौना बना लेती है।"

किन्तु प्रथम व्यक्ति पुनः बोला—"तुम सब भूलते हो! मैं स्त्रियों के सम्बन्ध में अच्छा या बुरा एक भी नहीं कहता किन्तु मैं जो कहना चाहता हूँ, वह यह कि अपनी सहधर्मिणी की एक भी कठोर एवं अपमान जनक बातें न सुननेवाला पुरुष वर्ग यह सोचे कि एक वेश्या के द्वार पर वे किस प्रकार कुत्ते की भाँति दुतकार कर हटाये जाते हैं। कुछ भी हो, अन्त मैं मधुगन्धा एक वेश्या है, कामी पुरुषों के वासना की तृप्ति का एक साधन है। वह विदुषी एवं पारङ्गत होकर भी वासना की तृप्ति के लिए ही जीती है। वह वासना के पाप की सजायी हुई एक जीवित प्रतिमूर्ति है। उसको हम जैसे नगर के श्रेष्ठ पुरुषों और राज-पद में प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने सजाया है तथा उसके रूप के गीत गा गाकर उसे शोखी या बड़प्पन की अहम्मन्यता से भरा दिया है। वह राज-पद के पुरुषों का तिरस्कार कर देना कोई बड़ी बात नहीं समझती और सच तो यही है कि हमारे पापों ने ही हमें ऐसी तिरस्कृत अवस्था में ला पटका है, अन्यथा मल-मूत्र से उत्पन्न इस शरीर-प्रेम में क्या सुख है?"

दूसरा बोला—"तुम इस बात पर चाहे जितना विचार कर सकते हो, और मधुगन्धा को त्याग कर पिछले पापों का प्रायश्चित भी कर सकते हो, किन्तु हमें तो मधुगन्धा चाहिए और अवश्य चाहिए।"

तीसरा बोला—"भद्र! हमें यह प्रयत्न भी करना चाहिए कि वह अपने उस नवागन्तुक प्रेमी को सर्वथा भूल जाय या यदि आवश्यकता हो, तो वह पुरुष बल पूर्वक भी हटाया जाय।"

चौथा बोला—"मैं मधुगन्धा को प्राप्त किये रहने के लिए हत्या तक

कर सकता हूँ, किन्तु बिना मधुगन्धा के जीवन की कल्पना तक नहीं कर सकता।"

पाँचवा बोला—"अच्छी बात तो यह है कि हम सब उसकी सारी बातें भूल जायँ और सदा की भाँति प्रेम प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे रहें।"

पहला बोला—"सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं। वह प्रतिदिन नवागन्तुक प्रेमी से मिलने जाया करती है। सुना है, वे दो व्यक्ति हैं। उनमें एक तो मधु-गन्धा के जाने पर भी बहुत कम मिलता है, किन्तु दूसरा प्रतिदिन उसके साथ रहता है, मधुगन्धा के साथ ही प्रातःकाल वायु सेवन करने निकलता है। सुना है, मधुगन्धा उसी पर मुग्ध है।"

"अपने प्रेम-पथ के इस रोड़े को शीघ्र ही दूर कर दूंगा।" उनमें से एक बोला।

अन्तिम बार वे सब मधुगन्धा के प्रवेश-द्वार पर दृष्टि डालते हुए एक दूसरे से भिन्न भिन्न पथ में जाने लगे। मधुगन्धा को उन सब के चले जाने से परम शान्ति मिली। वह एकाग्र होकर राजकुमार का चित्र बनाने में जुट गयी, जिसे वह प्रथम भेंट के दिन से ही प्रारम्भ कर चुकी थी।

इसी प्रकार मधुगन्धा जन-कोलाहल से दूर रहकर राजकुमार के प्रेम में मग्न उसी का चित्र बनाने में व्यस्त रहती थी। सन्ध्या समय देव-दर्शन एवं प्रातःकाल प्रिय-मिलन में बीत जाता था।

मधुगन्धा में एक और विचित्र परिवर्तन हो रहा था। वह राजकुमार को रागहीन जीवन बिताते देख, स्वयं भी शृंगार एवं वेश विन्यास से दूर भाग रही थी। सम्पूर्ण भोग सामग्रियों की आसक्ति हटकर राजकुमार के प्रेम में केन्द्रित हो रही थी। मधुगन्धा जाने अनजाने प्रेम के बीहड़ वन में उलझ रही थी। यह सब परिवर्तन राजकुमार के दर्शन के पश्चात् होना शुरू हुआ था।

मधुगन्धा की दास दासियाँ उसके जीवन की ऐसी परिवर्तित प्रक्रिया देखकर तरह तरह के अनुमान लगाया करती थीं। कोई कहती—"स्वा-मिनी को सम्पूर्ण भोगों से वैराग्य हो रहा है।" कोई कहता—"स्वामिनी अपने व्यवसाय को पाप पूर्ण समझकर रंगीले जीवन को तिलाञ्जलि देने वाली हैं।"

क्रमशः मधुगन्धा की जीवन-प्रवृत्तियाँ वासना से हटकर प्रेम की ओर मुड़ गयी। उसे भोग में रोग और वैराग्य में सात्विक योग का प्रशस्त-पथ दिखलायी पड़ा। वह शक्तिवान् को प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा में डूब गयी। उसे प्रेम के नाम पर समर्पित होते हुए देर न लगी। उसने निश्चय किया कि वह प्रियतम की सच्ची लगन से आराधना करेगी और कलङ्कित जीवन की केंचुली उतार फेंकेगी।

एक दिन मधुगन्धा जब राजकुमार के पुनीत सहवास में वायु-सेवन करके लौट रही थी, बोली, "राजपुत्र! अपने मधुर प्रेम की अमर सुधा को मुझे भी घूटने दो!"

किन्तु राजकुमार त्योरियां बदल कर शीघ्र बोला—"मधुगन्धा! मेरी दृष्टि में ये विचार अपराध हैं! मैं समझता हूँ भविष्य में तुम्हारी जिह्वा मुझसे इस प्रकार याचना न करेगी।"

मधुगन्धा की जिह्वा पर ताला पड़ गया। वह कर भी क्या सकती थी? वह मन ही मन चिहुँक कर रह गयी, "उफ, इतना कठोर अनुशासन? जो मैं चाहती हूँ, उसे कह भी नहीं सकती। प्रेम-याचना अपराध है। काश, प्रेम का तिरस्कार करना भी अपराध होता।"

वह अपने अन्तिम विचार से अपने आप सहम गयी—हृदय ने प्रश्न किया, "क्या तूने तिरस्कार नहीं किया?"

उसे अपने अपराध स्पष्ट दिखायी पड़े। मन ने कहा—जो बोया है, वही काटेंगे।

मधुगन्धा का प्रफुल्ल मुख कुम्हला सा उठा। शक्तिवान् उसकी मुख-मुद्रा-विचलित होते देख प्यार से बोला—"मधुगन्धा! प्रेम की आग लगाकर क्यों अपना हरा भरा जीवन फूँक रही हो!"

"क्या करूँ तो? कोई चारा नहीं।" वह दयनीय बनकर बोल उठी। "जिन नेत्रों में क्षण भर के लिए प्रेम चमका है, उनमें विरह-व्यथा के आँसू डबडबायेंगे ही।"

राजकुमार मुसकरा पड़ा। मधुगन्धा मन ही मन कह उठी, "निर्मोही!"

इसी प्रकार दिन पर दिन व्यतीत होने लगे। प्रति दिन मधुगन्धा

शक्तिवान् के वास-स्थल तक आकर अपने प्रेम देवता का दर्शन और ध्यान कर जाती थी। वह प्रतिदिन अपनी पीड़ा की कसक-कहानी सुनाने की चेष्टा करती किन्तु राजकुमार के सम्मुख आते ही उसके मुख में अवरोध के ताले लग जाते थे। मन ही मन मधुगन्धा अपने प्रीतम की चारित्रिक महत्ता देखकर विस्मय-विमुग्ध रह जाती थी। राजकुमार उससे हृदय खोलकर बातें करता और सहवास के सुख से मधुगन्धा के रोम रोम में जीवन भर देता था। किन्तु मधुगन्धा को न जाने क्यों इतने उदार व्यवहार भी आन्तरिक शान्ति न पहुँचा सकते थे। राजकुमार से विलग होते ही उद्वेगों का तब तक दौरदौरा रहता, जब तक वह तूलिका लेकर चित्र बनाने में न जुट जाती।

एक दिन मधुगन्धा जब अपने प्रीतम का अन्तिम बार चित्र संवार रही थी, तब प्रेम-लतिका उसके सामने हाँफते हुए आकर खड़ी हो गयी। उसे घबरायी देखकर मधुगन्धा बोली—"क्यों री! यह तेरी कैसी अवस्था है?

"चले गये ?" आश्चर्य अवाक होकर मधुगन्धा इतना ही कह सकी।

"हाँ वे दोनों गये, देवि !"

मधुगन्धा ज्यों की त्यों हाथ में तूलिका लिये हुए खड़ी ही रही। जैसे वह पाषाण-प्रतिमा हो। क्षण भर के लिए सम्पूर्ण चेष्टाएँ रुक सी गयीं। कहीं जीवन की गति रुक जाती तो उसे कितना सुख होता उस समय।

मधुगन्धा जहर की घूँट पिये सी निर्जीव भाव से बोली "तुम जाओ प्रेम लतिका।"

वह घूमकर तूलिका रखती हुई मन में बोली—"इस निर्जीव चित्र को सजीव बनाऊँगी मैं किन्तु..........अभी तो चित्र अधूरा है। मैं क्या करूँ? वह अधूरा छोड़कर चले गये हैं। अब कौन बनायेगा और सजायेगा? जब तक वह पुनः न आवें चित्र अधूरा रहेगा। मुझे तो अपनी पीड़ा से निबटना है, और वियोग-वह्नि में भस्म होना है।"

दासी शशि आयी—अभिवादन करते हुए बोली—"देवि! आज मङ्गलमय वसन्त प्रभात है। दास दासियां स्नानागार और शृंगार गृह

सजा चुकीं हैं। आज के दिन के लिए ही बहार के सारे सुख हैं। चलें वसन्तोत्सव मनावें।"

किन्तु मधुगन्धा प्रत्युत्तर में शशि से बोली—"आज मैं वसन्त न मनाऊँगी ? क्योंकि आज से ही मेरा पतझड़ प्रारम्भ है। शशि ! तुम दास दासियों से कह सकती हो, वे अपना वसन्तोत्सव मनावें। आज मेरा गृह अनिवार्य शून्यता में निमग्न रहेगा।

शशि जाने लगी। मधुगन्धा पुनः बोली—"दूसरी बात है, शशि ! मेरे समीप भी कोई न आयेगा, चाहे जैसी आवश्यकता हो।"

शशि दुबारा जाते जाते पूछ बैठी—"मैं भी नहीं ?" "तुम भी नहीं। जब कोई नहीं तो तुम कैसे ?"

शशि कुछ डरी सी और स्वामिनी के स्वभाव में आश्चर्य जनक परिवर्तन देख किसी भावी, आशङ्का से कांप उठी—मन ही मन बोली—क्या होगा ! मैं जानती हूँ। यह ऐश्वर्य नहीं रहेगा, मधुगन्धा राह राह की राख छानेगी। राजकुमार ! मिलें, न मिलें।

जब दास दासियां मधुगन्धा की दृष्टि से ओझल हो गयीं तब वह सजल नेत्र पथ पर, साजन की तसवीर बिठाये, अपने आप बोल उठी—अकृतज्ञ प्रेम-पथ की यात्रा ! तू बड़ी सूनसान, बड़ी वेदनामय, और अनन्य वियोगमयी है। मुझ अबला के भाग में यही बदा है क्या ? काश, एक पलक तो उनसे मिलने का सुखमय क्षण मेरे जीवन का सहारा बनता ! अरी ! प्रेम की बीहड़-डगरी ! मैं कैसे चल सकूँगी तुझ पर। वह अपने साथ मेरे सुख की सारी साधें ले गये। सारे अरमान कुचल कर फेंक गये !! अब क्या करूँ ?

घूम कर उसकी दृष्टि अपने विलासमय रङ्ग महल पर पड़ी। वह पागल सी कह उठी—"वह न आवेगा इन पाप-पूर्ण शयन-कक्षों पर ! इन्द्रासन के भोग तुच्छ हैं उसकी दृष्टि में, चलूँ, इस सरस प्रासाद को खण्डहर बना दूँ। इन्हें लेकर करूँगी क्या, जब उसे ही नहीं पाना है !

"ये स्वर्ण-कलश, रत्न भाण्डार, वैभव सम्पन्न सुखद प्रासाद, भोग विलास की सजी हुई कुसुमित रत्न-जटित सेजें, हेमयान जैसे अमूल्य यान

दास-दासी और स्नेह घोल कर पिलाये हुए पशु-पक्षी तथा भूमि-धन सब कुछ व्यर्थ हैं। इन सब के बीच रहते हुए भी मैं आज सुखी नहीं हूँ। आज कहते हैं, वसन्त आया है, मैं भी कहती हूँ, आया होगा, पर मुझे क्या पाना है। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे कोई इन रंगीन चित्रशालाओं में शून्यता भरने आया था। कौन आया था? वह तो नहीं ही आया। मैं महल में बुला रही थी, आज सूनसान में अकेले मिलने को उसकी स्मृति बुला रही है। क्या·······करूँ····मैं?

मधुगन्धा रो पड़ी। प्रिय विरह ने विह्वल कर दिया। जो प्रेम में रोने वालों को देख कर हंसती थी, वह आज पीड़ा की मार से स्वयं जर्जरित हो रही थी, वह उस अधूरे चित्र की प्रिय-प्रतिमा से कह उठी—"जाओ, अतीत स्मृतियों, जाओ प्रेम-प्रतिमाओं! तुम मुझे नहीं बहला सकतीं। मुझे प्रियतम का पूर्ण मिलन चाहिए। रङ्गों से व्यञ्जित प्रतिमा की रूप-रेखा में क्या धरा है।"

वह पास पड़ी हुई तलिका उठा लायी, हाथों से तोड़ दिया और पैर से मसला भी।

"लो, अब न चित्र बनाऊँगी, जो बनाना चाहा वह पूरा भी न हो पाया?"

विह्वल एवं प्रणय-व्याकुल मधुगन्धा निश्चय न कर सकी कि वह क्या करे? कोई अन्तर में चुपचाप बैठ कर कह तो रहा था—"खोज जहाँ, मिलन वहाँ।"

"अरे, इसका अर्थ क्या है?"

मधुगन्धा की विरह-सरिता आवेगों की चञ्चल-पीड़ा लिये क्षण प्रति क्षण जीवन को डुबा रही थी। वह इठलाती वायु का अञ्चल पकड़ कर कह उठती थी—"चञ्चल वायु! मैं तुम्हारी गति में मिल कर बहूँगी। मुझे दिखाना कि वे चितचोर कहाँ?"

मधुगन्धा प्रेम-देहरी से दुतकारी सी दूर खड़ी थी। उसके गत पाप हँस कर कह रहे थे—"प्रियतम के चरणों को स्पर्श से दूषित न कर।"

प्रश्न था कि मधुगन्धा क्या करे-क्या वह बनावटी हँसी में प्रेमिकों के

अमूल्य स्नेहोपहार स्वीकार करे और उनकी कुत्सित वासना का लक्ष्य बनी रहे, या वह रूप का सौदा मर्दा ले कण्ठ का आकर्षक जादू तथा विलास सामग्रियों का त्याग करे, उसे क्या कमी है ? अक्षय सम्पत्ति है फिर भी वह अकिञ्चनता की भावना से युक्त है ? फिर क्या करे, चले वह दुर्गम पथ पर !

वह सोचती—"मैंने क्या नहीं भोगा ? इन्द्राणियों का स्वर्ग सुख भूमि में प्रस्तुत कर मैंने उनका मान भङ्ग कर दिया। पर आज सारे सुख कितने सूखे हैं ? मैं कल ही हँसी थी, आज रो पड़ी।"

"मैं उसके मिलन-पूजन की आरती सजा कर खड़ी रहूँगी। नेत्र-कलशों में स्नेह-घृत जलता रहेगा। देखूँगी, शायद उस प्रकाश में वह आ ही जाय। शायद, वह पूछ ही बैठे कि किसकी प्रतीक्षा में ये पलक पुतरियाँ पथरा रही हैं !

मधुगन्धा अपने रङ्गमहल के उन कोनों में दृष्टि गड़ाये शून्य थी जहाँ मादक नूपुर-ध्वनि, वसन्तोत्सव के समय, मोहन मंत्र सुनाकर, सम्पूर्ण भवन को प्रेम की किलकारियों से छमछमा देती थीं। वह बोली—"आज गाने वाला कोई नहीं, मैं अपना गीत अकेले गाऊँगीः—वह वीणा के तार पर वाणी के मोहक मंत्रों को उतार कर गा उठी। शून्य रङ्ग शाला के मूक चित्र मधुगन्धा की अवस्था पर विद्रूप हँसी में मुस्करा उठे।

सारा दिन मधुगन्धा ने विषाद के गीतों में रो कर बिताया। सन्ध्या हुई तब शशि दीपक लगाने आयी। मधुगन्धा के आंसू रोते रोते सूख चुके थे। वह अपने सूजे हुए नेत्रों को छिपाती सी स्वयं शशि के पास जाकर बोली—"क्यों री, शशि ! यह द्वार पर कैसी भीड़ है ?"

वह स्वामिनी के सम्मुख अभिवादन करते हुए बोली, "भद्रे ! क्या आपको ज्ञात नहीं कि ऐसी भीड़ प्रति वर्ष द्वार पर हुआ करती थी। आज सब लोग आपकी प्रतीक्षा में अब तक वसन्तोत्सव नहीं मना सके हैं। राज-द्वार से बुलावा आने ही वाला है।"

कहाँ मधुगन्धा प्रति वर्ष वसन्त के रात्रि की प्रतिक्षण प्रतीक्षा करती थी और कहाँ इस वर्ष वही रात्रि भयावनी ज्ञात होती थी। वह बोली—

"राज-द्वार में जाना तो अनिवार्य होगा। अच्छा, वसन्तोत्सव मनाकर लौटे हुए दास दासियों से कहो कि वे स्नान और शृंगार की सामग्रियाँ प्रस्तुत करें।"

शशि मन ही मन प्रसन्न होती हुई स्वामिनी की आज्ञा पालन करने चली गयी और मधुगन्धा भी अनिच्छा पूर्वक राज-द्वार जाने के लिए स्नान शृङ्गारादि में जुट गयी। वह अभी केवल वस्त्र बदलकर केश गूंथने वाली थी कि राजद्वार का प्रतिहारी आ पहुँचा और बोला—"भद्रे! शीघ्रता करें। महाराज सभासद् एवं सामन्त वर्ग तथा श्रेणीगण आपकी प्रतीक्षा में हैं।"

वह बोली—"महाराज से निवेदन करना कि मैं आज अस्वस्थ हूँ। किन्तु पृथ्वीपति के दर्शनों के लिए शीघ्र ही उपस्थित होती हूँ।"

प्रतिहारी चला गया मधुगन्धा रुष्ट नाग से लहराते हुए केशों को खुले रखकर ही राज भवन की ओर चली। आज वह वैरागिणी सी आभूषण-विहीन महायान पर बैठी थी। लोग उस पर पुष्प और आम्र मञ्जरियां बरसा रहे थे। वह चुपचाप बैठी कभी २ बनावटी हँसी में मुसकरा पड़ती थी। शृङ्गार का सूनापन मधुगन्धा की मनोदशा को व्यक्त कर रहा था। फिर भी वह रूप का वरदान लिये सादे वेश में भी दर्शकों को उन्मत्त बना रही थी।

राज सभा में पहुँचते ही महाराज को अभिवादन करती हुई मधुगन्धा बोली—"पृथ्वीनाथ! आज मैं अस्वस्थ थी! विलम्ब के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

मुसकराते हुए महाराज बोले—"यही क्या कम एहसान है, जो तुम आ ही गयीं। चलो, कूक उठो।"

सारी राजसभा ठहाका मारकर हँस पड़ी। मनचले सामन्त बोल उठे—"प्रभो! मधुगन्धा के बिना सारी राज-सभा सूनी थी। इन्हें इस प्रकार विलम्ब के लिए क्षमा कर देना—क्या कहूँ, उचित होगा या अनुचित।

महाराज मुसकरा उठे। राजसभा में जीवन पड़ गया। मधुगन्धा एक बार सम्पूर्ण राज सभा पर दृष्टिपात करती हुई विक्षिप्त सी गा उठी—

कहाँ गये चित चोर, साजन !
दिन आये वसन्त के आली, थिरक रही हैं डाली डाली।
कोयल करती कू-कू काली, विरह मचाये शोर। कहाँ० ॥
पीड़ायें देने वे आये, किन्तु प्यार के गीत न गाये।
मैं बैठी हूँ अलख जगाये, तकती-पथ की ओर। कहाँ० ॥
तुझे समर्पित मधु की प्याली, मैंने युग चरणों पर डाली।
किन्तु अस्वीकृत, दृष्टि हटाली, ज्वलित विरह-दव घोर। कहाँ०॥
क्या जीवन-वसन्त दिन, आये ? या पतझड़ सन्देशा लाये।
साजन तो हमसे विलगाये, अँसुआ भरि चख-कोर कहाँ। गये०॥

सहसा मूर्च्छना-मय स्वर-लहरियां रुक गयीं जैसे प्राणों का सञ्चार शिथिल हो चुका हो। सभा मण्डप में शून्यता छा गयी। मधुगन्धा शून्य में लय होने वाली स्वर तरङ्गियों पर अपने जीवन की पीड़ा का उभार देख रही थी। महाराज बोल उठे—मधुगन्धा ! आज तो तुम्हारी वाणी, पीड़ा के बोल गा रही है ? यह आश्चर्य की बात है। विलासिनी मधुगन्धा सङ्गीत द्वारा श्रोताओं की छटपटाहट बढ़ाकर स्वयं मुसकराया करती थीं, आज विरागिनी मधुगन्धा पीड़ा के गीत गाकर स्वयं रो रही है। मधु-गन्धा ! अवकाश चाहती हो ?"

कर-बद्ध निवेदन सी करती हुई मधुगन्धा बोली—"यदि महाराज की आज्ञा हो।"

"तुम जा सकती हो और मैं भी चला।"

"और वसन्तोत्सव का क्या होगा, महाराज ?"

"इतना ही मनाया जायगा। या अन्य गायिकाएँ सभासदों का मनोरञ्जन करेंगी।"

महाराज सिंहासन से उठ खड़े हुए। सारी सभा खड़ी हो गयी। चोबदार नकीब बोलने लगे, बन्दीगण कीर्ति गान पाठ करने।

चलते हुए महाराज मधुगन्धा से बोले—"नगर की श्रेष्ठ अप्सरा ! तुम्हारी अवस्थापर मुझे दुख है। यदि मेरी सहायता आवश्यक हो……"

"तो मैं अवश्य महाराज से निवेदन करूँगी।"

महाराज चले गये। मधुगन्धा भी जाने लगी। सारा वसन्तोत्सव धुंधला सा पड़ गया। मधुगन्धा का उपेक्षित प्रेमी नगर का श्रेष्ठ सामन्त, उसे जाती हुई देख रक्त की घूँट, पीकर मन ही मन रह गया।

× × ×

जिस क्षण राजकुमार शक्तिवान एवं योगिराज प्रसिद्ध गायिका मधुगन्धा की नगरी में आये थे, उस समय शक्तिवान मन में मधुगन्धा से परिचय करने के लिए ही इतनी दूर बढ़ सका था। भेद की बात यह थी कि शक्तिबान् मधुगन्धा का सुयोग अपने पिता से कराना चाहता था। शक्तिवान एक बार मधुगन्धा को अपने पैतृक राज-प्रासादों में देख चुका था और उस समय के विलासी एवं लोलुपी सामन्तों को पराजित करने के हेतु मधुगन्धा केवल मात्र साधन थी। राजकुमार ने मधुगन्धा के मोहक नृत्य को दृष्टि गड़ा कर देखा था और यह भी देखा था कि मधुगन्धा के हाथ से आसन के नाम पर वे विष तक पी सकते हैं।

शक्तिवान की इच्छा थी कि मधुगन्धा को एक बार पुनः किसी सुयोग में अपने पैतृक राज प्रसाद में लेकर जायगा और उन रक्त शोषक सामन्तों के गले में मधुगन्धा के अनिवार्य रूप-मोहनी का जाल डाल कर प्रमाद पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करेगा किन्तु शक्तिवान ने देखा कि वह उसे ही प्राप्त करने की सतत चेष्टा में है। शक्तिवान् मधुगन्धा को प्रेम नहीं करता था किन्तु उसे अपने स्वार्थ-साधन का एक उपकरण समझ कर अपनाने अवश्य लगा था। मधुगन्धा को इस प्रकार आकर्षित होने की चर्चा उस सम्पूर्ण नगर में व्याप्त हो गयी। मधुगन्धा का राजकुमार की ओर सर्वस्व समर्पण देखकर नगर के विलासी-धनी-मानी-सामन्त ईर्षा से जल उठे और एक दिन अर्द्ध रात्रि में एक षडयंत्र सा कर के बलपूर्वक राजकुमार को हटा दिया।

नीतिज्ञ राजकुमार अपने पद एवं परम्परा का बोध किसी को नहीं कराना चाहता था अन्यथा उस नगर से उसे हटानेवाले स्वयं महाराज भी न होते क्यों कि शक्तिवान् महाराज का भानजा था। मधुगन्धा अवश्य इस

भेद को जानती थी किन्तु राजकुमार की गोपनीय बने रहने की इच्छा का वह भी समर्थन करती थी। अस्तु राजकुमार चलते चलते न मधुगन्धा से मिल सका और न कुछ कह ही सका। प्रेम करने की अवस्था में मधुगन्धा राजकुमार के लिए अधिक सहज हो चुकी थी। वही मधुगन्धा थी जिसने सम्राटों की प्रेयसी बन कर जीवन व्यतीत करना अस्वीकार कर दिया था किन्तु राजकुमार के सम्मुख नत मस्तक और आंचल फैलाये सी रहती थी। प्रेम-भीख याचना कर रही थी न? इसी बल पर शक्तिवान् राज्य के सामन्तों की शक्ति छिन्न भिन्न करने में अपने को समर्थ मान रहा था। वह समान प्रजातंत्र का समर्थक था किन्तु पिता के सम्मुख खड़े हो कर प्रतिद्वन्द्विता में भाग न लेना चाहता था। वह मधुगन्धा की पृष्ठभूमि में खड़ा होकर एकतंत्रवाद एवं सामन्तवाद को कुचलना चाहता था। भले ही उसके पिता एवं वंश परम्परा का अतीत सम्मान धूल में मिले, वह सर्वस्व-त्यागी बन कर भी प्रजा की धरोहर प्रजा के हाथों में ही सौंपना चाहता था।

राजकुमार का नगर त्याग मधुगन्धा के जीवन-मरण की समस्या बन कर उसके सामने उपस्थित हुआ। मधुगन्धा को यह जानने में देर न लगी कि किन व्यक्तियों के षड़यंत्र से राजकुमार को नगर छोड़कर जाना पड़ा है। वह अपने अत्यन्त विश्वस्त एवं भेद-कुटिल सेवक को बुला कर आदेश करते हुए बोली—"नीलकण्ठ! तुम जाओ, और राजकुमार जहाँ कहीं हो, उन्हें रुकने की प्रार्थना कर शीघ्र वापस आओ। अपनी यात्रा की शीघ्रता के लिए भृत्यों से कहो कि वे तुम्हारे योग्य अश्व ला कर दें। अश्वारोही बनकर शीघ्र खोज लोगे। वे दोनों कल रात्रि चले हैं, यदि सही पता लगा तो एक या दो दिवसों में उन्हें खोज सकोगे।

नीलकण्ठ जाने लगा। वह बोली—"मेरी ओर से प्रतीक्षा करने का आग्रह करते हुए यह पत्र उन्हें दे देना। और देखो, इस भेद को हम दो के सिवा अन्य किसी को ज्ञात न हो।"

"जो आज्ञा!"

नीलकण्ठ स्वामिनी को अभिवादन करता हुआ शक्तिवान् की खोज में निकल पड़ा। इधर मधुगन्धा अपने दांत पीसती हुई शशि को बुलाकर

बोली—"तुम नगर के श्रेष्ठ सामन्त विरूपाक्ष से कहना कि वे मुझसे शीघ्र मिलने का कष्ट करें।"

शशि को जाकर सूचना देने भर की देर थी। अविलम्ब शशि उसकी ड्योढ़ी में पहुँची और सेवक को अपने भेंट करने की बात बतलायी। जाकर लौटते हुए सेवक बोला—"स्वामी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

शशि ने अभिवादन करते हुए मधुगन्धा के सन्देशे को प्रकट किया। विरूपाक्ष शशि के साथ चलने का उद्यत हो गया। बात की बात में शशि एवं विरूपाक्ष मधुगन्धा के सामने आ उपस्थित हुए।

हृदय से आदर प्रकट करती हुई विरूपाक्ष के सम्मुख मधुगन्धा खड़ी हो गयी और अभिवादन करते हुए बोली—"श्रेष्ठ सामन्त के स्वागत में लधुगन्धा हृदय बिछाये हैं।"

विरूपाक्ष इस सम्मान को प्राप्त कर आश्चर्य अवाक सा रह गया और मन ही मन भाग्य के अनुकूल परिवर्तन को सराहते हुए बोला—भद्रे! आज मेरी आवश्यकता कैसे उठ खड़ी हुई ?"

मुस्कराते हुए मधुगन्धा बोली—"श्रेष्ठ सामन्त! मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि अपना सम्पूर्ण प्रेम आपके चरणों में उड़ेल कर कृतकृत्य हो जाऊँ।" कुछ बिसूरती सी मधुगन्धा चुप हो गयी किन्तु विरूपाक्ष उछल कर बोला—"क्या यह सच है भद्रे! या कोई मोहिनी-माया तो नहीं"—

"पूर्ण सत्य! सामन्तवर। किन्तु मार्ग में एक बाधा है।"

"क्या ?" कुछ सशङ्कित होते हुए विरूपाक्ष बोला।

"यही कि हमारे युगल प्रेमियों के प्रेम में बाधा बनकर सर्व श्रेष्ठी सत्य व्रत खड़ा होगा और अपने धन के प्रभाव से एक न एक विघ्न उपस्थित करता रहेगा।"

"क्या कहा सत्य व्रत ? वह तो मेरा परम मित्र है। वह कैसे बाधा उपस्थित करेगा ?"

"होगा आपका मित्र!" कुछ उपेक्षा करते हुए मधुगन्धा बोली—"मुझे तो वह सम्पूर्ण धन एवं प्रेम देकर भी सन्तुष्ट रखना चाहता है किन्तु एक बात रहस्यमय है!"

"क्या ?" विरूपाक्ष अपने परम मित्र सत्यव्रत को अन्तर में घृणा करते हुए बोला ।

"वह आपके जीवन का अन्त चाहता है !" कान में फुसफुसाते हुए मधुगन्धा बोली—

"क्यों ?" भौंहों पर कुछ बल और मरोड़ देते हुए विरूपाक्ष ने प्रश्न किया । "इस हेतु कि अपने प्रेम-पथ में आपको बाधा समझता है ।"

"अच्छा यह बात है ?" विरूपाक्ष मन ही मन कुछ गुनने लगा । मधुगन्धा क्षण भर के लिए उठकर वहाँ से दूर चली गयी और दूसरे सेवक से आकर बोली—"जाओ, भेद भरी दृष्टि से सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत को बुलाना और जब वे तुम्हारे पास आवें तो कह देना कि आज कल मधुगन्धा के अच्छे लक्षण नहीं । वह विरुपाक्ष को अन्तिम रूप से अपना प्रेमी बनाने वाली है । और फिर दृष्टि फिराकर कुछ भेद से यह भी कहना कि वे (विरुपाक्ष) मधुगन्धा के यहाँ बैठे २ अपना तो आनन्द मनाते हैं और तुम्हें मधुगन्धा द्वारा विष दिलाने की चेष्टा में हैं किन्तु वह स्वीकार नहीं कर रही है ।"

"बस, इतना ही कहना और भेद को गोपनीय बनाये रखने की बात कहकर पुनः आना ।"

सेवक को समझाकर विरुपाक्ष के निकट खड़ी हुई मधुगन्धा बोली—"सामन्त वर ! सोचिए मैं किसे अपना प्रेम दान समर्पण करूँ । इच्छा तो आपको सन्तुष्ट करने की है किन्तु सत्यव्रत के प्रभाव से भी मैं कम परिचित नहीं हूँ । वह प्राणों का भी ग्राहक हो सकता है । जानते ही हैं आप वह धन-कुबेर है । चाहे जिसके सम्मुख धन का आकर्षण रखकर अपनी नीच से नीच इच्छा की भी पूर्ति करा सकता है ।"

तीक्ष्ण दृष्टि से मधुगन्धा विरुपाक्ष को इस प्रकार देखने लगी जैसे भूखी सिंहनी अपने अहेर को देखती है । विरुपाक्ष अपने परम मित्र सत्यव्रत को मधुगन्धा के प्रेम के बीच बाधा पहुँचाने वाला समझकर बोला—"मैं तो इसे आज तक अपना परम मित्र मानता चला आया हूँ किन्तु आज ज्ञात हुआ कि उसके व्यवहार छुपे और कपट पूर्ण हैं ।"

विरुपाक्ष के नेत्र में प्रतिहिंसा चमक उठी। वह कुछ कठोर शासन स्वर में बोला—"मधुगन्धा! तुम्हें अपनी बात पर दृढ़ रहना होगा। यदि तुम्हारा प्रेम-दान मुझे प्राप्त होने वाला है तो बाधाओं से मैं अपने आप निपट लूंगा!"

मधुगन्धा का चिन्तित मुखड़ा प्रसन्न सा हो उठा—इधर सेवकिनी शशि ने प्रपञ्च रच रचाकर सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत को भी मधुगन्धा के वास-स्थल की ओर खींचा। वह भी शशि के साथ मधुगन्धा से मिलने चल पड़ा। दूसरे कक्ष में ठहराते हुए शशि, विरुपाक्ष एवं मधुगन्धा के बीच आकर बोली—"सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत आपसे मिलना चाहते हैं?"

"अच्छा! जाओ उन्हें आदर पूर्वक बुला लाओ।"

शशि सत्यव्रत को बुलाने चली गयी। विरुपाक्ष का रक्त क्रोध से खौल उठा। मधुगन्धा विरुपाक्ष से बोली—"यह लीजिए। वह आ पहुँचे। कृपया आप जाइए और किसी समय एकान्त में मिलने की कृपा कीजिएगा।"

विरुपाक्ष दांत पीसता हुआ मधुगन्धा के शयन-कक्ष से मुड़ चला। मधुगन्धा एक विद्रूप हँसी हँसते हुए अपने आप बोल उठी—"कामी-कुत्तो! तुम दोनों ने मुझे प्रियतम विहीन बनाया है। अब देखोगे, मधु-गन्धा कैसे बदला चुकायेगी। तुम दोनों की मित्रता तो आज ही शत्रुता में बदल चुकी। मधुगन्धा उठकर सामने जा खड़ी हुई, जहाँ से विरुपाक्ष बिदा हो रहा था—

शशि के साथ सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत भी आ पहुँचे—"कहाँ है, मधु-गन्धा।" शशि से प्रश्न किया।

"भद्रे! गवाक्ष से (खिड़की) देखिए न! वह विरूपाक्ष को बिदा कर लौट रही हैं।"

विरूपाक्ष को इस प्रकार मधुगन्धा का प्रेम व्यवहार प्राप्त होते देख सत्यव्रत का हृदय भी प्रेम की ईर्षा से जल उठा। मन ही मन बोला—"मित्र है तो क्या? प्रेमिका पर अपना प्रेम लादने की चेष्टा में है।"

तब तक अभिवादन करती हुई मधुगन्धा सामने आ खड़ी हुई। घृणा से मुख मरोड़ते हुए सत्यव्रत बोला "चला गया वह विरूपाक्ष?"

"हाँ, सर्वश्रेष्ठी वह गये तो किन्तु मैंने उन्हें आपके अहित करने के उद्देश्य से प्रेरित होते हुए देखा है !"

बेलौसी के साथ सत्यव्रत बोला—"बना रहे मेरा कोष ! मुझे मित्रों की कमी नहीं।"

मधुगन्धा ने देखा कि विरूपाक्ष के विपरीत सत्यव्रत में भी भावनाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं, इस हेतु वह अपना कपट-कौशल सफल होते देख सुख से मुसकुरा पड़ी। उसने उपयुक्त अवसर का लाभ उठाते हुए न जाने कितनी विपरीत बातें सत्यव्रत के मस्तिष्क में भर दी और अन्त में रहस्यपूर्ण मुद्रा में वह बोली—"प्रिय सर्वश्रेष्ठी ! आज मुझे ज्ञात हुआ कि मैं अधिक दिन तुम्हें प्रेम न कर पाऊँगी। विरूपाक्ष एक ऐसी ही धमकी देकर गया है।"

सत्यव्रत स्वभावतः कुछ भीरु होने के कारण मधुगन्धा से बोला—"क्या वह प्राणों को लेने पर तो न तुल बैठेगा ?"

"बहुत संभव है।"

कुछ सोचता हुआ सत्यव्रत बोला—"आज तक तो मैं विरूपाक्ष पर दया दृष्टि रखता आया हूँ। जिसका प्रतिफल वह मृत्यु बुला कर देने वाला है। लो, प्रिये ! मैं उसके नाश का भेद तुम पर प्रकट करता हूँ।"

सत्यव्रत के समीप आते हुए मधुगन्धा बोली—"क्या है वह !"

"वह कुछ थोड़े से पत्र हैं जिन्हें नगर की वर्तमान महारानी ने विरूपाक्ष को लिखे थे जिनके द्वारा उन दोनों के अनुचित सम्बन्ध का अपने आप भण्डाफोड़ हो जाता है।"

"कहाँ हैं वे पत्र !" उद्विग्नता छुपाते हुए मधुगन्धा बोली—

"मैं मंगाता हूँ !"

सत्यव्रत उठकर इधर उधर झांकने लगा सामने से शशि आती हुई दीख पड़ी। वह शशि को चाभी देते हुए बोला—"इसे लेकर जाओ, और मेरे भृत्य से कहना कि शयनागार में पलंग के पास जो छोटा सा पत्रों का सन्दूक है, वह तुम्हें दे दे।"

शशि स्वामिनी का मन्तव्य गूढ़ सङ्केतों में समझ कर सत्यव्रत के

वास स्थान की ओर चल पड़ी और इधर कनक-कलश उठा कर सत्यव्रत के पास रखती हुई बोली—"लो, इस बहुमूल्य पात्र में आसव का मदीला रस भरा है। चिन्ताओं का त्याग करो और जीवन को रंगीले स्वप्नों की झाँकी में विस्मृत कर दो।"

सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत मधुगन्धा की इच्छा का आदर करता हुआ बोला—"तुम्हीं पिलाओ ! प्रिये !! तुम्हारे रूप दर्शन में क्या कम विस्मृति है फिर भी जितना भर भर पिला सको, पिलाओ। आज का क्षण मूल्यवान है, प्रिये ! क्या जाने, कब तुम रूठ जाओ।"

"न, सर्वश्रेष्ठी ! मेरी तो अन्तिम प्रतिज्ञा है विरूपाक्ष को कुचल कर तुमसे दृढ़ प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करना। देखें, ईश्वरेच्छा क्या है ?"

मधुगन्धा ने रत्न जटित सुवर्ण पात्र में छलकती हुई सुरा को सर्वश्रेष्ठी के हाथों में देते हुए कहा—"जितना पिलाऊँगी, पीना पड़ेगा।"

उस पात्र का आसव घटघटाते हुए सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत बोला—"हाँ, हाँ, पीने से क्या मैं पिछड़ता हूँ !"

मधुगन्धा ने मुस्करा कर दूसरा प्याला बढ़ाया और क्षण भर पश्चात् वह भी सर्वश्रेष्ठी के गले से नीचे उतर गया।

प्यास बढ़ी, प्याले मधुगन्धा पिलाने लगी। सत्त्यव्रत झूमता हुआ अपने ही स्थान पर कभी गाने और कभी चिल्लाने लगा। इधर सेवकिनी शशि भी छोटी सन्दूकची लिये वहाँ जा पहुँची। सत्त्यव्रत तो बेसुध हो रहा था, जीभ लड़खड़ा रही थी फिर भी शशि को देखते ही प्रसन्नता से गद्गद हो उठा। उसने मधुगन्धा को खींच कर चुम्बन करते हुए कहा—"लो, इसे खोलकर वे सारे पत्र देख लो।"

चाभी और सन्दूकची अपने अधिकार में करती हुई कुछ घृणा में भर कर मधुगन्धा मन ही मन बोली—"छिः दुष्ट ! अन्त में तेरे जलते हुए होठ मेरे कपोलों पर पड़ ही गये। थोड़ी सी प्यास शान्त करने का आज साधन मिला है किन्तु ठहर ! मैं तुझे शान्त किये देती हूँ।"

इस बार मधुगन्धा ने अत्यन्त तीक्ष्ण एवं दाह युक्त मदिरा को सुरभित पेयों के साथ मिला दिया और अन्तिम प्याला सत्त्यव्रत को पिलाती हुई

उसे अपनी गोद में लिटाकर प्रेम की थपकियां देना प्रारम्भ किया। वह भोगों से युक्त, रूप का प्यासा लक्ष्मीपुत्र क्षण प्रति क्षण मधुगन्धा की रूप-राशि में पतङ्ग की भाँति भस्म हो रहा था। संयोगवशात् प्यारी की गोद और सरस लोरियों से भरी मीठी थपकियों ने उसे उत्सवमग्न कर दिया। रूप, मदिरा एवं सङ्गीत की त्रिधारा में बह कर वह अनन्त में निमग्न सा हो गया।

मधुगन्धा ने वह कपट-पिटारी खोली जिसमें विरूपाक्ष के सर्वनाश की सामग्री प्रस्तुत थी। सचमुच, वह दो अश्लील प्रेम पत्रों को प्राप्त कर प्रसन्न हो उठी। प्रथम पत्र विरूपाक्ष का था जिसमें वह राजमहिषी की प्रेमयाचना करता हुआ उसे अभिसारिका के रूप में प्राप्त करना चाहता था। दूसरा पत्र राजमहिषी का था जिसमें विरूपाक्ष को प्रेमालिङ्गन करने के हेतु वह भी उत्सुक थी और जिसमें मिलन का दिन, समय और स्थानक निश्चित पता था। पत्र में राजमहिषी के हस्ताक्षर थे। मधुगन्धा इन दोनों पत्रों को अपने अधिकार में करती हुई शशि से बोली—"रथ चालक से बोलो कि वह शीघ्र रथ लाकर द्वार पर प्रतीक्षा करे।"

शशि स्वामिनी की आज्ञा प्राप्त कर कार्य से चली गयी। मधुगन्धा सर्वश्रेष्ठी को उसी विस्मृत अवस्था में पड़ा देख विद्रूप हंसी में हँस पड़ी। पत्रों की खोज करते हुए एक पत्र सर्वश्रेष्ठी सत्त्यव्रत के विरुद्ध भी मिल गया जिसे वह पड़ोस के राजा के पास अपने हस्ताक्षर से भेज रहा था जिसमें उसने राजमहिषी के दुराचारिणी होने के कारण अपना यह सन्देह प्रकट किया था कि एक दिन महाराज को अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा। उसी पत्र में सत्त्यव्रत ने पड़ोस के राजा को आमंत्रित किया था कि वह अमुक तिथि में आकर राजमहिषी एवं विरूपाक्ष के अनुचित सम्बन्ध को देख सकता है।

उक्त पत्र सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत केवल लिख ही सका था और उसके हस्ताक्षर भी थे किन्तु पत्र भेजना संभवतः अगले दिन के लिए निश्चित रहा हो।

मधुगन्धा ने चुपचाप पत्रों की वह पिटारी उठा ली और शशि को

सत्यव्रत की देख रेख में छोड़कर रथ पर जा बैठी और बोली—"राज-प्रासाद चलो।"

सारथी रथ हांकने लगा। मधुगन्धा अनेक तर्क-वितर्कों की ऊहापोह में न जाने क्या-क्या सोच रही थी। कुछ देर पश्चात् राज-प्रासाद के द्वार पर रथ पहुँचा। मधुगन्धा वहाँ चलकर प्रतीक्षा-गृह में आ बैठी और महाराज के द्वारपाल को सूचना दी कि वह महाराज से मिलना चाहती है। महाराज उस समय आमोद-प्रमोद में तल्लीन थे। मधुगन्धा का अचानक पहुँचना उन्हें खटका किन्तु उसके मिलने की प्रसन्नता भी हुई। महाराज ने द्वारपाल को आज्ञा दी—"मधुगन्धा को यहीं बुलाओ।"

क्षण भर में मधुगन्धा महाराज के सम्मुख जा उपस्थित हुई। वह नतमस्तक होकर महाराज को अभिवादन करती हुई बोली—"देव! मैं कार्य विशेष से आयी हूँ। प्रार्थना करने के पूर्व मेरा अनुरोध है कि मेरे एवं महाराज के अतिरिक्त अन्य कोई न उपस्थित रहे।"

"ठीक है।"

द्वारपाल को आज्ञा देते हुए महाराज बोले—"देखो! जब तक मधुगन्धा मेरे पास से लौटकर न चली जाय, तब तक अन्य कोई न मिल सकेगा।"

"जो आज्ञा"—कहता हुआ द्वारपाल चौकसी करने चला गया, तब मधुगन्धा कृत्रिम भय के साथ प्रार्थना करते हुए बोली—"महाराज के सम्मान-रक्षा को अपना धर्म समझ कर कुछ रहस्यमयी बातें प्रकट करती हूँ। यदि महाराज मुझे क्षमा करते हुए समुचित प्रबन्ध करें तो महाराज एवं राजमहिषी एक महान् लाञ्छन से मुक्त हो सकते हैं।"

कुछ आश्चर्यान्वित से महाराज बोले—"मधुगन्धा! मेरी समझ में कुछ न आया! तुम मुझे रहस्यमयी-सी लगती हो।"

"सब अपने आप समझ में आ जायगा! महाराज!!"

मधुगन्धा ने सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत की पिटारी से प्राप्त पत्रों को महाराज के सम्मुख रख दिया। महाराज ने पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया और समाप्त करते-करते होठ चाबते हुए बोले—"कुत्ते! ये सामन्त बनते हैं! हमारे सन्मान और हमारी सत्ता के ये शत्रु हैं। मैं इन्हें देखता हूँ।"

महाराज ने द्वारपाल को बुलाया और आज्ञा दी कि प्रधान जी शीघ्र बुलाये जांय। दूत दौड़ पड़े और बात की बात में प्रधान जी भी आ उपस्थित हुए। उन्होंने अभिवादन किया किन्तु महाराज की बदली हुई तेवर देखकर काँप उठे।

महाराज ने आज्ञा दी—"प्रधान जी! सामन्त विरूपाक्ष और सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत इसी क्षण बन्दी बनाये जावें।"

"जो आज्ञा!"

वह जाने लगे किन्तु महाराज बोले—"लीजिए, यह प्रमाण हैं दो पत्र इसके अतिरिक्त राज्य पलटने के सफल षड्यंत्रों का भी बहुत बड़ा भेद उद्घाटित हुआ है। ये सारे भेद भरे पत्र और सर्वश्रेष्ठी का पिटारा मेरे अधिकार में रहेगा।"

महाराज चुप हो गये। प्रधान जी एक ही श्वांस में दोनों पत्रों को पढ़ गये। क्रोध से उनका मुख भी तमतमा उठा। वह बोले—"महाराज! आप निश्चिन्त रहें। जिस विश्वासघात पर दोनों तुले हैं, वह अवश्य बहुत बड़ी दुर्घटना है।"

महाराज इस कठिन अवसर पर भी मुस्कुरा पड़े—"प्रधान जी! धन्यवाद है ईश्वर को और मधुगन्धा को जिसने मेरे सम्मान की बहुत बड़ी रक्षा की और जिसने राज्य के शत्रुओं का सम्पूर्ण भेद खोल दिया।"

महाराज ने रत्न जटित कण्ठा उतार कर मधुगन्धा के गले में डाल दिया और बोले—"मैं अपनी सबसे बहुमूल्य वस्तु उपहार में दे रहा हूँ। इसके अतिरिक्त आज से तुम राज्य के हितचिन्तकों में गिनी जाओगी। इसके लिए राज्य की ओर से अतिरिक्त पुरस्कार प्राप्त होगा।"

मधुगन्धा प्रसन्नता में खिल-सी उठी। विरुपाक्ष एवं सत्यव्रत जैसे प्रबल शत्रुओं को बात की बात में पछाड़ दिया। वह महाराज को अभिवादन करती हुई खड़ी हो गयी।

चलने को उद्यत जानकर महाराज ने उठकर मधुगन्धा का सम्मान किया और बिदा करते हुए बोले—"मधुगन्धा! तुम्हारे इस उपकार को मैं कभी न भूलूंगा।"

"महाराज ! मैंने उपकार नहीं, कर्तव्य किया है। महाराज चिरायु हों।"

मधुगन्धा लौटकर अपने शयन-कक्ष में पुनः आ बैठी। दासी शशि अब तक सत्यव्रत के पास ही बैठी हुई थी। स्वामिनी के उपस्थित होते ही वह बोली—देवि ! यह तो एक क्षण के लिए भी अपने आपे में लौटकर नहीं आया।"

"बेसुध रहने दो, इसे तब होश आयेगा जब हाथों में हथकड़ियाँ और पावों में बेड़ियाँ झनझनायेंगी"---लापरवाही से मधुगन्धा बोली।

शशि स्वामिनी की विजय से अत्यन्त प्रसन्न हुई। मधुगन्धा भी दासी के विचारों को समझते हुए बोली—"शशि ! मैं जाती हूँ, शयन करूँगी और तुम तब तक इसी नीच के पास रहना। घड़ी दो घड़ी में प्रधान जी स्वयं इसे बन्दी बनवाकर कारागार में भेजने की व्यवस्था करेंगे।

मधुगन्धा दूसरे शयन कक्ष में जाकर निद्रा-मग्न हो गयी। एक प्रहर पश्चात् राज सैनिक मधुगन्धा के शयन कक्ष पर आये और उसी बेसुध अवस्था में सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत को बन्दी बना डाला और दूसरी ओर विरूपाक्ष भी राजसत्ता का कोप-भाजन बनकर कारागार जा पहुँचा। मधुगन्धा बहुत दिनों पश्चात् शान्ति के साथ निद्रा की गोद में बेसुध हो गयी।

इन दिनों मधुगन्धा कुछ निश्चिन्त सी रहने लग गयी थी। नगर भर में विरूपाक्ष और सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत को एकाएक बन्दी बना लेने के सम्बन्ध में विभिन्न चर्चाएं हो रही थीं। उधर मधुगन्धा का पुरस्कृत होना यह भी प्रमाणित करता था कि संभव है, मधुगन्धा स्वयं इस षड़यंत्र को रचकर उन दोनों के नाश का कारण बनी है।

इधर मधुगन्धा अपने विश्वस्त सेवक नीलकण्ठ की प्रतीक्षा कर रही थी जिसे उसने राजकुमार शक्तिवान एवं योगिराज की तलाश में भेजा था। मधुगन्धा पुरस्कृत होकर भी अपने मन में अधिक लज्जित थी। केवल इस हेतु कि वह अपनी ओर से राजकुमार शक्तिवान को कोई सुख न पहुँचा सकी। इसके विपरीत उनके नगर-निर्वासन का कारण भी वही बनी। क्या कहे वह अपने को? एक ओर उपेक्षित है तो दूसरी ओर पुरस्कृत।

मधुगन्धा सोचने लगी "वह इस समय कहाँ होंगे ? कड़ी धूप और सर्द वायु चल रही है। ताप से उकता कर किसी आम्र झुरमुट में बैठकर मुसकरा रहे होंगे वह ! यही उनकी विशेषता है।"

"कहाँ भटक रहा होगा, नीलकण्ठ ! उसे तो शीघ्र आना चाहिए था किन्तु वह भी एक पखवारे से भी अधिक दिन व्यतीत कर चुका किन्तु अब भी कोई पता नहीं है।"

"मधुगन्धा यह भी सोचती कि शक्तिवान के रोक लेने पर शायद नीलकण्ठ न आ सका हो, किन्तु शक्तिवान क्यों रोकने लगा ?"

मधुगन्धा मन ही मन सङ्कल्प करती—"यदि इस समय में उन्हें पा जाती तो कभी सङ्ग न छोड़ती। जहाँ वे जाते, उनके साथ जाती; उनका दर्शन करती, उनका आचरण एवं व्यवहार परखती और यदि मेरी सेवा स्वीकार करते तो मैं उन्हीं के सङ्केत पर सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर देती।"

शक्तिवान की प्रत्येक स्मृति आशा के रंगीन फूलों से सजकर मधु-गन्धा के जीवन पट पर अङ्कित सी हो जाती थी। वह कहती—"हाय रे वे बीते दिन ! जब हम दोनों ने एक दूसरे से कुछेक पलों में परिचय पा लिया था, और जब उन्होंने समर्पण की स्वीकृति पर "शायद हाँ, शायद ना" जैसा प्रत्युत्तर देकर मुझे एक विचित्र आकर्षक स्थिति में छोड़ दिया था, तब भी मैं इसके भीतर छुपे हुए भेद का अर्थ समझकर भी, यही स्मृतियों के आदान-प्रदान का खेल खेलती रही। आज स्मृति के क्षीण तागे बटते बटते ऐसे दृढ़ हो चुके हैं कि वे तोड़े नहीं जा सकते। और जीवन के मधुर खेलों की ग्रन्थि भी इसी दृढ़ बन्धन में बंध गयी है।"

मधुगन्धा की अन्तर्दृष्टि में प्रेम का वह प्रशस्त प्रेम-पथ उभर उठता जिसका राही पीड़ा की ठोकरों से उफ न करेगा। वह प्रियतम के प्रेम में झेली हुई प्रत्येक कठिनाइयों को, जीवन की मधुर स्मृतियों के कोष में ही स्थान देगी।

मधुगन्धा मन ही मन अनुभव करती—"मेरा प्रियतम मुझसे दूर खड़ा है, मुझे बुला रहा है। वह आडम्बर हीन है। मैं अपने को सजाये

क्यों रहूँ ? मुझे तो उस पथ पर चलना पड़ेगा जो उसकी प्राप्ति में अभीष्ट हो !"

उसने उसी क्षण निश्चय किया कि नीलकण्ठ के आने के पश्चात् मुझे कुछ न कुछ निश्चित करना ही पड़ेगा। वह चिन्ता घबराहट और बेचैनी में एक सप्ताह और बिता गयी। नीलकण्ठ आया और राजकुमार का सन्देशा भी लाया किन्तु वह मधुगन्धा को शान्ति न पहुँचा सका।

मधुगन्धा ने राजकुमार को अपने से दूर हटते देखा एक दिन यह निश्चय कर डाला कि जीवन का सारा साज शृङ्गार त्याग देना श्रेयस्कर है। अच्छा, यदि राजकुमार उसे न मिला तब वह क्या करेगी ? किसी प्रकार उसे यह समझ ही लेना पड़ेगा कि प्रेम की असफलता का अनिवार्य परिणाम क्या होगा ?

"क्या होगा ?" अपने से ही दुहरा कर वह बोली।

"सर्वनाश।" अन्तरात्मा ने प्रत्युत्तर दिया।

एक दिन मधुगन्धा शशि को बुलाकर बोली—"मेरी यात्रा प्रारम्भ होने वाली है। तुम्हें साथ चलना पड़ेगा। नीलकण्ठ और एक दो अतिरिक्त दास दासियां भी चलेंगी। इस हेतु तुम जाकर आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध कर लो।"

शशि जैसे जानती ही थी कि एक न एक दिन मधुगन्धा को उक्त नगर से अरुचि हो जायगी। वह बहती हुई जल की धारा है। एक क्षण भी ठहर नहीं सकती इसी हेतु वह हर प्रकार की सामग्रियां प्रस्तुत रखती थी।

शशि ने दिन भर में यात्रा की समस्त आवश्यकताएँ पूरी कर डाली और सन्ध्या समय स्वामिनी से जाकर निवेदन करती हुई बोली—"देवि ! हम लोगों को कब प्रस्थान करना होगा ?"

"सोच रही हूँ, शशि !" वह बोली "मैं अनुमान लगा रही हूँ कि वे अरावली की ओर से चल कर गये हैं। क्या वे पितृगृह तो नहीं लौट जाना चाहते ?"

"नीलकण्ठ ने इस सम्बन्ध में क्या सूचना दी है ?"

"वह केवल यही जान सका कि राजकुमार अरावली के किसी रमणीय खण्ड पर निवास कर ग्रीष्म और पावस के दिन व्यतीत करेंगे।"

"कोई चिन्ता की बात नहीं भद्र! नीलकण्ठ ने पग २ भूमि जोह डाला है। वह इस पथ का पुराना यात्री है। वह राजकुमार को खोज निकालेगा।"

कुछ सोचने के पश्चात् मधुगन्धा ने अगले दिन को यात्रा की तिथि नियुक्त किया और इसलिए वे दूसरे दिन प्रातःकाल नगर त्याग कर राजकुमार शक्तिवान की खोज में चल निकले।

× × ×

साधु श्री वत्स की कुटिया में जलती हुई अग्नि का धीमा प्रकाश फैला हुआ था। धूनी की अग्नि-शिखाओं में अपनी दृष्टि गड़ाये श्रीवत्स श्वेतपद्मा से बातें कर रहा था। श्वेतपद्मा पिता की लाड़िली सन्तान होकर भी पिता के शासन में कठोरता का अनुभव करती हुई अपने विचारों में परिवर्तन लाने की सतत चेष्टा कर रही थी। एक ओर ज्ञानी श्रीवत्स अपने अनुभव का पाण्डित्य लिये हुए श्वेतपद्मा को संसार के अनेक सुख एवं आकर्षणों की कथा सुना कर उसे निर्लिप्त रहने का उपदेश दे रहा था दूसरी ओर यौवन पथ पर प्रथम चरण रखनेवाली श्वेतपद्मा पिता से कह रही थी "यह रंग बिरंगा संसार मनोमोहक है पिता!" क्षण भर रुक कर "उन सुखों को प्राप्त करना चाहिए जो प्रारब्धवशात् हमें उपलब्ध हो रहे हैं।"

साधु श्रीवत्स कहता—"व्यर्थ हैं सारे सुख और उनके आकर्षण।"

"क्यों! देव!! यदि भोगों की उपलब्धि का सुख हम न उठायें तो इससे अधिक वंचित जीवन और क्या हो सकता है? प्रकृति ने अक्षय-भाण्डार देकर मनुष्य को परिपूर्णता की स्थिति में लाकर रख दिया है। इतने पर भी सुखों और भोगों से हम वंचित ही रहें, यह मेरी समझ में नहीं आता।" "बेटी!" साधु कहता, "यदि हम भोगों की उपलब्धि में ही जीवन बिता डालें तो कर्मोपासना की आदर्श परम्परा का विनाश हो जाता है। हम जो कुछ करते हैं वह अन्तर से प्राप्त किसी प्रेरणावशात् ही

करते हैं वहीं अन्तर में पैठकर, कौन जाने, हमारे शुभ-अशुभ कर्मों को चुन कर अलग करता है। शुभ कर्मों में परिपूर्ण आनन्द और अशुभ कर्मों में पश्चात्ताप की पीड़ा का उदय होता है। बेटी! भोगपथ में क्षणिक सुखोन्माद के पश्चात् चिर-पश्चात्ताप की भावना जीवन की समस्त क्रियाओं को ले डूबती है। इसी हेतु हमें कर्मोपासना की आदर्श परम्परा स्थापित रखने के लिए भोगों से मुह मोड़ना पड़ता है।"

श्वेतपद्मा को इस युक्ति में सन्तोष न प्राप्त होता था अतः वह पुनः पिता के सारे विचारों पर पल भर सोचकर कह बैठती—"कर्मोपासना की आदर्श परम्परा का आपके विचारों में क्या अर्थ है? क्या मनुष्य स्वादपूर्ण भोजन त्याग कर एक ऐसे भोजन को ग्रहण करे जो रसहीन हो, फिर वह कहे, मुझे अपने भोजन में कोई आकर्षण नहीं? तब प्रश्न उठता है, भोजन ही क्यों करे?

श्रीवत्स प्रत्युत्तर देता—"कर्मोपासना की आदर्श परम्परा का मूलमंत्र है कर्मफल से अनासक्ति। यह अनासक्ति की स्थिति तभी संभव है जब हममें किसी भोग्य-पदार्थ के प्रति आसक्ति न रहे।"

पिता की इच्छा का साधारण सा अर्थ समझती हुई श्वेतपद्मा बोली—"आप जिस स्थिति की चर्चा करते हैं वह भी तभी संभव है, जब भोगों को भोगने के पश्चात् प्राप्त करने की इच्छा न रहे। एक अर्थ में जीवन की शून्य स्थिति तभी संभव है जब जीवन में उठने वाले हलचलों का समाधान हो, अन्यथा आदर्शों के आडम्बर में जीवन कलपता रहेगा।"

साधु श्रीवत्स ने अनुभव किया था कि श्वेतपद्मा में कुछ ऐसी रागात्मिका वृत्तियाँ स्वभावतः उत्तेजन स्वीकार कर रही हैं जो शैशव या किशोर जीवन में कभी अनुमान में भी न आयीं थीं।

श्रीवत्स बोला—"बेटी! तुम्हारे जीवन में विप्लव मचनेवाला है। तुम बालकपन से भिन्न शारीरिक अवस्था में पहुंच चुकी हो। देखना! आकर्षणों से बचना।"

श्वेतपद्मा ने एकाएक नेत्र मींच लिये और मनही मन बुदबुदा उठी—"आकर्षणों से बचना? कैसे बचना? यह प्रकृति स्वयं आकर्षण मय है।

इस बनकी मदीली वायु में इठलाती हुई लताएँ झोंके खा खा कर उन्माद में नाचा करती हैं। पुष्पों के विकसित सौन्दर्य को देखकर गुनगुनाते भौंरे न जाने उनके कान में कौनसी सङ्गीत भर जाते हैं? वृक्षों की शाखा में फुदकते हुए पक्षी एक दूसरे के प्रगाढ़ आलिङ्गन में फंसाकर विहंसती दृष्टि से वन को देखा करते हैं। यह सब क्या है? केवल आकर्षण है? अथवा जन्मान्तरों के संस्कार से परिवेष्टित जीवन स्वयं मचला हुआ, सारी भोग सामग्रियों में पलभर आसक्त हुआ सा, अतृप्तियों को चिर-तृप्ति का जल पिलाता है।"

अत्यन्त श्वेतपद्मा बोली—"पिताजी! क्या यह सारा दृश्य-जीवन असत्य है? क्या जीवन में छायी हुई पुलकावलियाँ सार-हीन है? क्या संसार के मोहक रंगमञ्च पर उभरते हुए जीवन के नव-अभिनय स्वप्न-व्यङ्ग हैं?"

वह विक्षिप्त सी पिता के मुखपर टकटकी लगाये उत्तर पाने की बाट जोह रही थी। श्रीवत्स के शान्त जीवन में एक हलचल मयी उद्विग्नता पैठ गयी थी। वह श्वेतपद्मा को थकित नेत्रों से देखता हुआ बोला—'बेटी! सचमुच संसार में सब कुछ स्वप्न व्यङ्ग जैसा ही है। वन में फूलों को प्रथम बार मुस्कराते हुए और फिर खिलते देखते हैं, वे एक ही सन्ध्या में सारा पराग लुटा कर मुरझाते और सूख जाते हैं। इसी प्रकार यह खिलता हुआ जीवन आकर्षणों की प्रथम झाँकी में ही अपना सब कुछ खो बैठता है। फिर जीवन में शेष क्या रह जाता है?"

"क्या इस तथ्य को स्वीकार करने पर प्राप्य सुखों की ओर से नेत्र ढक लेना चाहिए? यह कैसे संभव है, पिता जी!"

"अभ्यास और वैराग्य द्वारा सब कुछ संभव है! श्वेतपद्मा!!"

फिर वही चिढ़ाने वाला वैराग्य, पिता के मुख से सुनकर श्वेतपद्मा क्रुद्ध सी उठी। मन ही मन बोली—"कितनी निर्दय भावनाएँ हमारे जीवन पुष्प को पूर्ण विकसित होने के पूर्व ही कुचल डालती हैं। प्रकृति के साथ पूर्ण सहयोग करना पाप माना जाता है। प्रकृति के अक्षय-भाण्डार का उपभोग करने से हमें जान बूझ कर वञ्चित रखा जाता है।"

श्वेतपद्मा को मौन देखकर साधु श्रीवत्स बोला--"अभ्यास और वैराग्य से तुम्हें स्वाभाविक अरुचि-सी हो गयी है। क्यों, श्वेतपद्मा ! मैं ठीक सोच रहा हूँ न।"

--"बिलकुल ठीक, पिताजी !"--निर्भय स्वर में श्वेतपद्मा बोल उठी। "अभी मैं कितनी ही सुखद एवं सुहावनी कल्पनाओं को हृदय के उपवन में लगा रही हूँ। अभी उनकी कलियों के खिलने और मुसकुराने के दिन भविष्य के अन्तराल में छिपे हैं। अपने सुख की भावी आशा में, स्वप्नलोक से उतारकर जिन अल्हड़ आकांक्षाओं को जगा रही हूँ उनके भी मुक्त हास्य में खिलखिला उठने के क्षण बाकी हैं। कैसे मैं स्वीकार करूँ अभ्यास और वैराग्य ? अभी तो राग-रञ्जित जीवन की रूप-रेखा भी उभरी नहीं है। उनके आह्वान की आकुल कल्पना केवल एक आध अनुभूतियों में है जिन्हें मैं अभी पहचान सकी हूँ।"

"पिताजी !" वह पुनः अल्हड़ भाव से बोली--"मैं अपने रहने के लिए अलग संसार की सृष्टि कर रही हूँ। आप मुझे आज्ञा दें कि मैं उसे अपनी रुचि के अनुकूल बना सकूँ। मैं जीवन पथ पर चलते हुए आपकी शिक्षाओं और सदुपदेशों का ध्यान रखूँगी किन्तु सम्पूर्ण वैराग्य की कल्पना तो मेरे हेतु कोरा पागलपन है। मैं क्या समझूँ वैराग्य और क्या जानूं अनासक्त भाव से विश्व वैचित्र्य के रहस्यपूर्ण भेद !"

साधु श्रीवत्स कन्या के स्पष्ट तर्कों को सुनकर सिहर-सा उठा। मन ही मन सोचने लगा कि वह श्वेतपद्मा को कितना अबोध समझता था किन्तु वास्तविकता यह है कि रहस्यमय परिधानों में ढकी हुई श्वेतपद्मा भी अन्ततः रमणी है। बन्धन उसका स्वाभाविक धर्म है। प्रकृति ने स्वयं नारी को अपने स्वरूप के अनुकूल रचने में आशा से अधिक सफलता प्राप्त की है।

कुछ निराश होते हुए श्रीवत्स बोला—"बेटी ! तुम अपने लिए अवश्य नयी रचना करो। तुम्हारी सृष्टि तुम्हें सुखकर हो। मैं तुम्हारे सुख में बाधा नहीं पहुँचा सकता किन्तु सुखोपभोग में मोहित न हो जाना, यही मेरी अन्तिम शिक्षा है।

साधु श्रीवत्स ऊबा हुआ सा उठ खड़ा हुआ और वन की ओर जाते हुए एकाएक लौटकर श्वेतपद्मा के समीप जा खड़ा हुआ और कन्या का मस्तक चूमते हुए बोला—"प्यारी बेटी! तुम अपना हृदय छोटा न करना। सच तो यह है कि एक दिन संसार के आकर्षणों से डरकर मैं भी निर्जन-वन में आ बैठा था। मैंने अनुभव किया था कि लौह चुम्बक जैसा यह संसार और उसमें निवास करने वाले जीव हैं! एक दूसरे से चिपके हुए। इसी हेतु जीव अपनी प्रभु-सत्ता का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं कर पाता योगों की वृद्धि से असंयत हुआ जीव, साधना-पथ से भ्रष्ट हो जाता है, और कल्याण-पथ से दूर होता हुआ महामोह-पथ में पतित होकर नर्कगामी बनता है। यह जीवन का दर्शन सदैव ही स्मरणीय है। इसे केवल अपने स्मृति-पटल पर से ओझल न होने देना।"

साधु श्रीवत्स कन्या को वात्सल्य दृष्टि से देखता हुआ वन की ओर चला गया। अपने आप में उलझी श्वेतपद्मा भी उठकर पिता से प्रतिकूल दिशा में चल पड़ी। श्वेतपद्मा को समस्त अतीत जीवन पर एकाएक दृष्टिपात करने की भावना सताने लगी। वह सदैव की भाँति निर्मल चाँदनी के नीचे एक स्थान पर जाकर आसीन हो गयी। उसने स्मृति के दिन से लेकर आज तक के जीवन में माता-पिता का दुलार भरा अनुपम व्यवहार सुखद अनुभूतियों के रूप में दृष्टि के सम्मुख चित्रित पाया। तब वह सोचने लगी कि अपने प्राणों के समान प्यार करने वाले पिता के प्रति क्यों न आज्ञाकारिणी बनी रहे? क्या माता पिता को सन्तान पर यह भी अधिकार नहीं कि वे देखें कि उनकी सन्तान उन्हीं के इंगित किये मार्ग पर चल रही है अथवा जिस नवीनता को सन्तान स्वीकार करती है वह उसके भावी जीवन पर क्या प्रभाव डालता है?

एकाएक श्वेतपद्मा अपने आप कुछ लज्जित सी हो गयी। उसे लगा कि पिता को प्रत्युत्तर देने में उसने जिन स्पष्ट तर्कों का सहारा लिया है, वे यदि न उच्चारण किये गये होते तो उचित ही था।

धीरे २ श्वेतपद्मा को ज्ञात हुआ कि उसका जीवन एक साथी के बिना व्यर्थ सा है। अनेक स्मृतियों के अन्तर्धान के पश्चात् राजकुमार शक्तिवान

की धुंधली स्मृति उसके अन्तर पट में उभर उठी। वह अपने आप ही बोल उठी, "ओह वह परदेशी राजकुमार एक रात्रि अतिथि बना था। कैसा था वह? चाँद सा सुन्दर जैसे वह भी आकाश लोक से इस पृथ्वी पर उतरा था। ओफ, उसके सम्भाषण में कितना मिठास था, कितना आकर्षण? वह फिर कभी क्यों न आया? वह रात उससे बातें करते हुए कितनी शीघ्र बीती थी? वह थोड़ा सा ही विश्राम कर सका था। यदि वह मेरा साथी होता तो ये वनस्थली की शून्य चाँदनी रातें हँसी हँसी में बीत जाया करतीं। ओह! कैसी मुसकराहट उसके मुख पर नाचा करती थी। वह स्वर्ग लोक का निवासी रहा होगा? उस जैसा तो आज तक कोई दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

श्वेतपद्मा समझ न सकी कि अचानक कैसे वह परदेशी राजकुमार उसकी दृष्टि-पथ पर आकर खड़ा हो गया। पूर्व स्मृतियों का अकारण स्फुरण कुछ आश्चर्य युक्त है। श्वेतपद्मा ने हृदय टटोल कर देखा तो उसे ज्ञात हुआ जैसे एक अज्ञात अभाव उसके जीवन में पीड़ा घोलकर कहीं पुनः छिप गया हो। इस कुतूहल को श्वेतपद्मा कुछ भी न समझ सकी। वह उठकर अव्यवस्थित सी इधर उधर टहलने लगी और कुछ क्षणों पश्चात् चुपचाप अपनी कुटी में जाकर सोने की चेष्टा करने लगी।

साधु श्रीवत्स उस रात कुछ देर से लौटकर आया था। श्वेतपद्मा की मां अब तक पति की प्रतीक्षा में जग रही थी। पति के आते ही हाथ पांव धोने के हेतु जल का पात्र लेकर खड़ी हो गयी और स्नेह पूर्वक पति से बोली—"आज इतनी देर तक कुटी के बाहर कैसे रह गये?"

श्रीवत्स जल का पात्र पत्नी के हाथ से लेते हुए बोला—"आज मुझे बड़ी अशान्ति है। क्या कहूँ, क्षण भर भी शान्ति नहीं मिल रही है।"

"ऐसा क्या कारण है।" कुछ चिन्तित सी पत्नी बोली।

"कारण श्वेतपद्मा की चिन्ता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है।"

"कैसी चिन्ता?" पत्नी भी कुछ उद्विग्न होते हुए बोली।

साधु श्रीवत्स हाथ पांव धोकर पत्नी के पास ही बैठ गया और बोला- "प्रिये! श्वेतपद्मा के भविष्य की चिन्ता ने व्याकुल कर दिया है। वह हम

लोगों की भाँति बनवासी जीवन व्यतीत कर सकेगी, इसमें मुझे सन्देह है। कारण स्पष्ट है। जाने अनजाने यौवन का प्रमाद उसके जीवन में भर रहा है। वह अपने प्रेम करने योग्य किसी पुरुष की छाया से अब तक अनभिज्ञ है किन्तु प्रकृति का उद्वेग उसके जीवन में प्रमाद भरना आरम्भ कर चुका है। वह अशान्त और अव्यवस्थित है। उसके योग्य वर की आवश्यकता मुझे सता रही है। श्वेतपद्मा को किस पुरुष रत्न के हाथों सौंपूं, यही चिन्ता है।"

पत्नी बोली—"विवाह संस्कार तो सचमुच एक समस्या है। मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि इस कार्य के लिए एक बार पुनः नागरिक जीवन की शरण लेनी पड़ेगी।"

"बस, यही असम्भव है, प्रिये! श्रीवत्स इस वन भूमि को पार कर कहीं नहीं जा सकता।"

पत्नी क्षण भर सोचती हुई बोली—"तब चिन्ता क्यों? जो कुछ श्वेतपद्मा के प्रारब्ध में होगा, वह होकर रहेगा।"

श्रीवत्स पुनः खिन्न हो गया। वह बोला—"प्रिये! आज बारम्बार मेरे नेत्र अभाव की पीड़ा से गीले हो जाते हैं। आज हमें अपना तपस्वी जीवन व्यङ्ग सा लगता है। हम अपनी अकेली सन्तान के भावी जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने में असमर्थ और असहाय जैसे लगते हैं। क्या होगा फिर?

पत्नी ने श्रीवत्स के बहलाने का उपक्रम करते हुए कहा—"चिन्ता छोड़ो, जो होना है, वही हो कर रहेगा। प्रियतम! तुम तो हमेशा प्रभू की भक्ति में भूले हुए इतना बड़ा जीवन व्यतीत कर चुके हो। आगे भी उसी के सहारे जीवन के प्रत्येक व्यापार चलने दो। श्वेतपद्मा अपने भाग्य और पूर्वार्जित पुण्य के सहारे अपने जीवन के सुख-दुख का साथी पा लेगी। विधि विधान को कोई नहीं जानता।"

श्रीवत्स पत्नी के लाख समझाने और सान्त्वना देने पर भी अपनी चिन्ता को दूर न कर सका। श्वेतपद्मा अपनी कुटिया में पड़े पड़े माता-पिता की बातें ध्यानपूर्वक सुन रही थी। कम से कम वह इतना ज्ञान तो अवश्य

रखती थी कि रमणी-रत्न को माता पिता के अतिरिक्त एक ऐसे सङ्गी और प्रियतम की आवश्यकता होती है जो पति बनकर उसके साथ रमण करता और जीवनभर के सुख-दुख का साथी होता है। श्वेतपद्मा किसी अपरिचित के साथ जीवन व्यतीत करने की कोई कल्पना नहीं कर सकती थी किन्तु फिर भी साथी के रूप में उसकी ममता को पगाने वाली शक्तिवान् की स्मृति एक तीव्र आकर्षण छोड़ गयी थी। इस लिए श्वेतपद्मा मन ही मन बोल उठी—"ये मेरे माता-पिता व्यर्थ की चिन्ता में अपने को पीड़ित कर रहे हैं। मैं तो उसी राजकुमार के साथ विवाह करूँगी अन्यथा जीवन भर क्वांरी रहूँगी।"

श्वेतपद्मा की इच्छा हुई कि वह अपना मन्तव्य माता-पिता पर प्रकट कर दे। इस हेतु वह अपनी कुटी से निकल कर निर्मल चाँदनी में माता-पिता के पास जा खड़ी हुई। श्रीवत्स पुत्री को जगा हुआ देख मन ही मन बहुत विस्मित होकर बोला—"अब तक तू सो न सकी, बेटी! क्यों?"

निष्कपट भाव से श्वेतपद्मा बोली—"मैं आपकी सारी बातें अब तक सुनती रही हूँ। मुझे दुख है कि मेरे जीवन की चिन्ता आप दोनों को कष्ट पहुँचा रही है किन्तु पिता जी! आप मेरी बात सुनें तो मैं निवेदन करूँ।"

पुत्री के मुख को देखता हुआ श्रीवत्स बोला—"कहो बेटी! तुम क्या कहना चाहती हो।"

वह कुछ लज्जित होती हुई बोली—"पिताजी! एकान्त वनस्थली की मुक्त वायु में पल कर मैं बढ़ी हूँ और एकमात्र सन्तान होने के कारण दुलारी भी रही हूँ। मुझे कभी किसी प्रकार की चिन्ता व्यथित करने में असमर्थ रही है किन्तु मेरे प्रति जो चिन्ता आपको विह्वल किये हुए है, मैं हटाना चाहती हूँ।"

मुस्करा कर श्रीवत्स बोला—"बेटी! वह चिन्ता तो स्वाभाविक है। सन्तान-वान होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी चिन्ताओं का सामना करना पड़ता है।"

"किन्तु मेरे लिए आप तनिक भी चिन्तित न हों" वह बल देकर बोली।

"असम्भव है, बेटी ! मुझे तुम्हारे भावी जीवन का निश्चित कार्यक्रम स्थिर करना ही पड़ेगा । विवाह भावी जीवन के लिए आवश्यक संस्कार है ।"

"उसे मैं अपने आप निश्चित करूँगी !"

श्वेतपद्मा का दुस्साहसी प्रत्युत्तर सुन कर क्षण भर के लिए माता-पिता को आश्चर्य हुआ और श्वेतपद्मा भी लज्जित होकर सिकुड़ी सी बैठी रह गयी किन्तु दूसरे ही क्षण किसी भावी आशा की मोहनी ने श्रीवत्स को निश्चिन्त सा कर दिया । वह श्वेतपद्मा को सङ्केत करते हुए बोला— "बेटी ! मैं तुम्हारे प्रत्युत्तर से अप्रसन्न नहीं हूँ । क्या तुम अपने योग्य साथी का चुनाव कर सकोगी ?"

"अवश्य पिताजी ! मैं अपने जीवन का साथी स्वतः चुन लूंगी ।"

श्वेतपद्मा प्रत्युत्तर देती हुई माता पिता के पास से दूर भाग खड़ी हुई । श्वेतपद्मा के चले जाने पर श्रीवत्स पत्नी से बोला—भारतीय विवाह पद्धति में तीन प्रकार के विवाह प्रधान हैं (१) ब्राह्म विवाह (२) स्वयम्बर और (३) गान्धर्व ।

पत्नी कुछ उपहास करती हुई बोली—"श्वेतपद्मा के लिए गान्धर्व विवाह ही उचित होगा क्योंकि वर का चुनाव श्वेतपद्मा की इच्छा पर छोड़ दिया गया है और ऐसा विवाह तभी संभव हो सकता है जब युवक युवती के बीच में संयोगवशात् एक स्थान पर रहने या कहीं एकान्त स्थान पर मिलने या दूर से ही एक दूसरे के रूप गुण की प्रशंसा सुनने पर स्वाभाविक प्रेम का अङ्कुर उत्पन्न हो ।"

श्रीवत्स पत्नी को समझाता हुआ बोला—"हमें श्वेतपद्मा पर भी इसका कम या अधिक दायित्व डालना ही पड़ेगा क्योंकि सभी माता पिता या पुरोहित वरवधू के चुनाव में इतने दक्ष नहीं हो सकते कि वे समान धर्मी वर-वधू का चुनाव सफलता पूर्वक आसानी से कर सकें ।"

पत्नी मुस्करा पड़ी और बोली—प्रियतम ! विवाह की सर्वोत्कृष्ट प्रणाली तो ब्राह्म विवाह ही है । हाँ एक बात टेढ़ी खीर है ।

"वह क्या ?" श्रीवत्स बोला ।

"विकासोन्मुख युवक युवतियों के स्वभाव की परीक्षा।" पत्नी ने उत्तर दिया।

कुछ सोचता हुआ श्रीवत्स बोला—"इसी लिए हमें यह उचित प्रतीत होता है कि इसका दायित्व श्वेतपद्मा पर ही रहे क्यों कि विवाह की सभी प्रणालियां किसी न किसी रूप में सदोष हैं ही। यदि वर के चुनाव में वधू का हाथ रहा तो विषमता के उत्पन्न होने की विशेष संभावना नहीं रहती। वास्तव में यह उचित भी है।"

श्रीवत्स का चिन्ता से भरा हुआ हृदय कुछ हलका पड़ गया। वह श्वेतपद्मा की समयोचित साहसिकता को देख कर मुग्ध हो गया और मन ही मन ईश्वर की प्रार्थना करता हुआ पत्नी से बोला—"भगवान पर ही सारा भार डाल कर निश्चिन्त हूँ। कम से कम श्वेतपद्मा भी इस पहेली को सुलझाने में सहायक है।"

रात्रि अधिक बीती जान कर पत्नी बोली—"चलो, प्रियतम! विराम करो और चिन्ताओं को त्यागो। भगवान बेड़ा पार करेंगे।"

अर्द्ध रात्रि के उपरान्त श्रीवत्स पत्नी से बातें करता हुआ निद्रा मग्न हो गया और सारी चिन्ताएँ निद्रा की गोद में जाते ही अन्तर्ध्यान हो गयीं।

× × × ×

राजकुमार शक्तिवान् मधुगन्धा का परित्याग कर एक बार पुनः उलटे पाँव लौट चला। योगिराज शक्तिवान् के अद्भुत प्रभाव से इतना परिचित न था। मार्ग में योगिराज ने वन-स्थली के एक अद्भुत सुन्दर प्रदेश को देखा था। उसकी रमणीयता पर वह मुग्ध हो चुका था। चलते चलते एक स्थान पर आसन लगाकर वह बैठ गया और बोला—"अब कुछ दिनों इन्हीं घने आम्र कुञ्जों की छाया के नीचे पड़े पड़े प्रकृति के साथ विहार करेंगे।"

शक्तिवान को वह स्थान परिचित जैसा जान पड़ा। इसी हेतु उस स्थान पर ठहरने में वह आना कानी भी करता रहा किन्तु योगिराज

का जमा हुआ आसन शीघ्र ही उठ जावे, यह बात भी कुछ असम्भव जैसी ही थी। अन्त में शक्तिवान को रुकना ही पड़ा।

योगिराज तो प्रकृति का अद्भुत उपासक था। इस हेतु वह जहाँ पर भी अपनी रुचि का स्थान देखता, वहीं आसन डालकर चिपक सा जाता था। कभी कभी राजकुमार को यह बात अखरती भी, किन्तु उपाय भी दूसरा न था।

पूरा दिन व्यतीत हो चुका था। योगिराज वास-स्थल की उचित व्यवस्था में अब भी लगा था। शक्तिवान् को इस समय थोड़ा सा अवकाश मिल चुका था। पूनों की रात थी। सारा वन चाँदनी की चमक से स्वच्छ चमक रहा था। शक्तिवान खुले वन में घूमने निकल पड़ा। अभी वह आगे ही बढ़ता जाता, सहसा उसकी दृष्टि किसी नव-युवती के अनिन्द्य सौन्दर्य पर पड़ कर एकाग्र सी हो गयी। राजकुमार हटकर पेड़ों की ओट में छिप गया। वह न जाने कब तक उस वन-बाला को देखता रहा! जब वह स्वतः उठ कर आश्रम की ओर चली गयी तब शक्तिवान को भान हुआ कि वह उसकी पूर्व-परिचित श्वेतपद्मा है।

श्वेतपद्मा की इस उपस्थिति ने कुतूहल सा उत्पन्न कर दिया। दूसरे दिन पुनः उसी समय पर आने का सङ्कल्प लेकर राजकुमार भी अपने वास-स्थल को चला गया।

शक्तिवान् का सारा दिन योगिराज के साथ श्वेतपद्मा की प्रतीक्षा में बीता। धीरे धीरे रात्रि का वह पहर भी उपस्थित हुआ जिसकी प्रतीक्षा में राजकुमार बेकली को छिपाये चुपचाप तड़प सा रहा था। वह दबे पांव विना योगिराज से कुछ कहे ही वन की ओर निकल पड़ा। श्वेतपद्मा का अब तक उस स्थान में कोई पता न था। इस हेतु निर्दिष्ट स्थान पर बैठ कर राजकुमार सम्मोहन मंत्र का ध्यान सा करने लगा।

अन्त में श्वेतपद्मा गिनगिन कर पांव बढ़ाती हुई निकलती चाँदनी के समक्ष एक पाषाण खण्ड पर जा बैठी। राजकुमार श्वेतपद्मा के सम्मुख जाकर एक वृक्ष की ओट से न जाने कितनी देर तक रूप-वारुणी की

मादक घूटों को नेत्र प्यालियों में भर भर कर पीता रहा श्वेतपद्मा अपने आप में खोयी हुई जाने क्या सोच रही थी।

इसी अवस्था में बैठे लगभग एक प्रहर व्यतीत हो चुका। अब इस भाँति चोरा चोरी के द्वारा अपनी दर्शन-प्यास बुझाना राजकुमार को अखरा। वह घूम कर श्वेतपद्मा के समक्ष जा खड़ा हुआ। एक अपरिचित को अपने सम्मुख देख सहसा श्वेतपद्मा पूछ उठी, "कौन हो तुम भद्र! इस सूनसान में इस प्रकार विचरण कर रहे हो? क्या नगर-पथ से तुम अपरिचित हो।"

"नहीं ऋषिपुत्री! मैं तुम्हारी ही खोज में भटक रहा हूँ।"

"मेरी खोज में?" कुछ आश्चर्य मिश्रित भाव-भङ्गिमा के साथ बढ़ते हुए शक्तिवान् के समीप आकर पहचानते हुए बोली—"तुम तो परिचित जैसे ज्ञात होते हो। क्या कभी मेरे इस आश्रम में अतिथि बनकर भी रहे हो।"

"हाँ, केवल एक बार!"

श्वेतपद्मा की धुंधली स्मृतियाँ जाग्रत होकर स्पष्ट उभर आयीं। वह स्नेह-मिश्रित स्वर में बोली—"तुम राजकुमार हो न? महलों के सुख वैभव को त्याग, कुश-कण्टकों की राह पर केवल मेरी खोज में भटक रहे हो? लो, मैं तुम्हारे सम्मुख खड़ी हूँ।"

राजकुमार निःसङ्कोच बोला—"श्वेतपद्मा! परिहास-व्यङ्गों द्वारा मुझे अधिक पीड़ित न करो। महलों के सुख-वैभव में मुझे तनिक भी शान्ति न मिली। मैं इस निर्जनता के गोपनीय अङ्क में तुम्हें—केवल तुम्हें खोज रहा था।"

"कहती तो हूँ कि मैं तुम्हारे सम्मुख ही खड़ी हूँ। और क्या चाहिए।"

"मुझे तुम्हारा प्रेम-दान चाहिए और उसके उपभोग करने की प्रतिज्ञा-बद्ध स्वीकृति।"

"यह तो बच्चों का खिलवाड़ नहीं! राजकुमार!! प्रतिज्ञा-बद्ध स्वीकृति का अर्थ है विवाह! भला इन बातों को मैं क्या सुलझा सकती हूँ। एक निर्धन ऋषि की एकलौती सन्तान मैं और एक सत्ताधारी महीपति के

ऐश्वर्यवान उत्तराधिकारी तुम ! संसार हम दोनों के प्रेम सम्बन्ध पर हँसेगा। बोलो, इसपर कभी विचार किया है।"

"मुझे राज-पाट की या ऐश्वर्य-भोग की कुत्सित लीला में जीवन नहीं व्यतीत करना है। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए और तुम्हारा सुखद सहवास भी। मैं और कुछ नहीं चाहता।"

श्वेतपद्मा जिसे नारी-पुरुष के आकर्षण का साधारण सा ज्ञान था, खिलखिला कर हँस पड़ी, "क्या प्रेम-पीड़ा एक प्रकार का पागलपन तो नहीं ?" वह बोली।

राजकुमार श्वेतपद्मा की हँसी से खिन्न हो उठा किन्तु वह अपनी सफाई देते हुए बोला—"प्रिये ! मेरी एकान्त-विरह-रातों को अप्रिय एवं असत्य न समझना। मैंने चिर-मिलन की प्रतीक्षा में प्राणों के दीप जलाये हैं। मेरी ममता के तागे स्नेह-घृत में सन कर जीवन में प्रेम की अमर ज्योति जगाये बैठे हैं। बोलो ! अपने अल्हड़-प्यार के छलकते हुए प्यालों को मेरे होठों से लगने दोगी अथवा चिर-अतृप्ति की प्रज्वलित तृष्णा में ही जीवन-लीला का अन्तिम पटाक्षेप होगा।"

"आज इन प्रश्नों का मेरे पास अन्तिम उत्तर कुछ नहीं है। राजकुमार ! मैं बार बार तुम्हारी बातों पर विचार करूँगी और सत्यान्वेषण और विश्लेषण की कसौटी पर तुम्हारे प्रेम की विदग्ध-ज्वाला को कसूँगी। प्रेम एक धोखा भी हो सकता है, प्रेम की ओट में जलती वासना की होली धधकती रहती है। मुझे निश्चय करना पड़ेगा कि मैं किसकी भेंट में अपने जीवन को चढ़ा दूँ। कलुषित वासना के पतन-गर्त में अपने को डुबाऊँ और आत्म-प्रवञ्चना एवं अनुताप को लेकर जीवन भर कुढ़ती रहूँ, अथवा प्रेम के अगाध एवं नैसर्गिक स्रोत में जीवन को निमग्न करूँ और प्रेम की सतत उपासना में तुम्हारे हाथों अपने को सौंप दूँ !"

श्वेतपद्मा झरने की चंचल धारा में चमकते हुए चाँद की छाया पर दृष्टि गड़ाये हुए मन ही मन कह रही थी, "यह प्रेम भी इतना ही चञ्चल है। इसका क्या भरोसा ? जुगनू की चमक पर चाहे स्थिरता का विश्वास

कर लिया जाय, किन्तु एक सत्ताधारी के मोहक-वचनों का क्या विश्वास ! असमान के साथ कैसा प्रेम-व्यवहार ?"

श्वेतपद्मा ने पुनः शक्तिवान् पर दृष्टि डाला पर उसने देखा कि वह अपने नेत्रों में एक अद्भुत आकर्षण भरे उसे ही अपलक देख रहा है।

पलभर के लिए श्वेतपद्मा सहम गयी। वह शक्तिवान् की दृष्टि से अपने नेत्र न मिला सकी। अधखुली पलकें लज्जा के बोझ से झुक गयीं। वह इस जादू की प्रच्छन्न पीड़ा से सिहर उठी। अन्तर से जैसे किसी ने सचेत किया—"छल है, दूर हटो। उन हृदय-बेधी—स्नेह-बाणों का स्वाभाविक निशाना न बनो।"

किन्तु·······दूसरे ही क्षण जैसे श्वेतपद्मा पसीज उठी। उसे ज्ञात हुआ कि जैसे वह शक्तिवान् के हृदय को तोड़कर एक निर्दय कुकृत्य कर रही है। क्यों न वह भावी प्रीतम के लिए सदस्य बन जाय ? किन्तु क्या सपने सच होंगे ? क्या श्वेतपद्मा और शक्तिवान् के बीच की असमानता दूर होगी ? असंभव ! एक अनहोनी बात !!

अन्त में एक दृढ़ निश्चय के साथ श्वेतपद्मा बोल उठी—"राजपुत्र ! लौट जाओ। तुम एक वनवासिनी कन्या के प्रेम-दान के अयोग्य हो। महलों के वैभव में पाला पोसा दुलार भरा जीवन तपस्विनी की प्रेम-प्रतीक्षा की पीड़ा न सह सकेगा ! राजकुमार ! अपने आप को न दुखाओ। अच्छा है, मुझे भूल जाओ और सुखकर है, कि अब से, प्रेम के नाम पर अपने को न लुटने दो।"

श्वेतपद्मा राजकुमार की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखने लगी। उसे ज्ञात हुआ कि उसके प्रत्युत्तर ने राजकुमार की भावना में एक हलचल पैदा कर दी है। आवेश से राजकुमार का मुखड़ा तमतमा आया है। वह एक ऐसी वजनी बात कहना चाहता है जिसे कहने के पूर्व अपने आप तौल रहा है।

अन्त में शक्तिवान् के होठ फड़फड़ा उठे और उसकी वाणी निर्भय स्वर में बोल उठी—"तपस्विनी ! जाने को मैं आज जाता हूँ किन्तु याद रहे कि तुम्हें प्राप्त किये बिना मैं जीवन की मुक्ति नहीं चाहता, मृत्यु स्वीकार

नहीं करता। समझीं प्रिये! तुम्हें मेरे हृदय ने प्रेमिका के रूप में ही स्वीकार किया है। सच मानना या तो तुम्हें अपना बनाऊँगा अथवा निराश होने पर कृत-सङ्कल्प जीवन को प्रेम-प्रयत्नों की चिता पर सुला दूंगा। यह एक पुरुष की प्रतिज्ञा है, एक क्षत्रिय हृदय की टेक है, और एक प्रेमिका के एकाङ्गी प्रेम की अनन्य प्रेम पूजा है।"

अन्तिम बार श्वेतपद्मा को नेत्र भर देख कर शक्तिवान लौट चला। श्वेतपद्मा ज्यों की त्यों चित्र लिखी सी—ठगी सी अपने स्थान पर खड़ी रही। वह हाँ ना कुछ न कर सकी।

शक्तिवान् उसकी दृष्टि से ओझल हो गया। वह चाँदनी रात्रि की निस्तब्ध एकाग्रता में शक्तिवान् के अन्तिम शब्दों को सोच रही थी। जैसे वह सम्पूर्ण वन शक्तिवान् की अन्तिम प्रतिज्ञा से गूंज उठा हो, जैसे शक्तिवान् क्षणभर के लिए भी चुप न होकर अपनी प्रेम-प्रतिज्ञा घोषित कर रहा हो।

शक्तिवान् के अकल्पनीय प्रेम-पीड़ा के प्रभाव से अपने एकान्त में श्वेतपद्मा चिहुँक उठी—"छली! यह वीरता कैसी, और कैसी यह प्रेम-व्रत की विडम्बना! दूसरे के हिस्से में पीड़ा का अभिशाप छोड़कर अपने आप विजयी बनने जा रहे हो। देखूंगी! कितना पुरुषत्व है और कितनी कठोरता।"

शक्तिवान् श्वेतपद्मा की दृष्टि से ओझल हो गया। वह थकी सी, विह्वल सी, पीड़ा की प्रतिमूर्ति बनी अपने आप में गड़ गयी वह निराश दृष्टि से वन की रजत-शोभा में अपने जीवन की आकुलता का प्रथम चित्र उभरता हुआ देख जैसे कह उठी—"वह·······हाँ·······वह·······राजकुमार एक जादू लेकर आया था। हाँ, तभी तो सारा हरित-वन श्वेत-चाँदनी का दिव्य वस्त्रालङ्कार पहन कर उसकी प्रतीक्षा में इठला रहा था।"

श्वेतपद्मा विचारों की ग्रन्थि लेकर बैठ गई। शायद यह ग्रन्थि शक्तिवान के संयोग के पश्चात् ही पड़ी थी। "वह कौन है?" उसकी ममता का मेरे जीवन के साथ कैसा सम्बन्ध? अरे, यह तो अभी अभी की कहानी है किन्तु वह एक चित्रकार की भाँति, अभिन्न प्रेम की तूलिका से

माया-ममता के रङ्गों में जीवन-पट पर एक चित्र खींच गया है। कैसा है वह चित्र ? मनो-मोहक, महान्, आकर्षक !! ज्ञात होता है, जैसे मेरे प्रेम-प्रभू की स्वतंत्र-सत्ता का रहस्य-मय संदेश जन्मान्तरों से विचार-धारा की परम्परा में एक अव्यक्त वासना के रूप में उलझा हुआ किसी गोपनीय स्तर से छुपा था। आज वह वर्तमान में उभर कर जन्मान्तरों की स्मृति को ताजा टटका कर रहा है। जीवन को अतृप्त बनाये रखने का हेतु बनकर एक प्यास उमंग उठी है। वह मेरे प्राप्त करने की प्रतिज्ञा लेकर मेरे अभिसार से विमुख होकर गया है। अच्छा है, मैं भी प्रतिज्ञा करूँगी। शायद वह आ ही जाये, शायद मुझे प्राप्त भी कर सके।"

श्वेतपद्मा जीवन में पहली बार कुछ खोयी सी आश्रम की ओर चल पड़ी। वन-वासिनी का एकान्त राजकुमार शक्तिवान की प्रतीक्षा का आश्रय लेकर नीरस हो चला था। अपने आश्रम में भी सूनापन अनुभव कर श्वेतपद्मा झुँझला सी रही थी। जहाँ उसके पास क्रीड़ाओं के मधुर बोल गूँजा करते थे, वहाँ अब एक खामोशी की बस्ती बस गयी थी। श्वेतपद्मा के पावों में गति न थी पर वह चली जा रही थी। सोचती—"वह निर्दय राजकुमार अपने मिलन की सौगात में यह निर्दय स्मृति-पीड़ा छोड़ गया है। इसे हृदय के अन्तराल में कहाँ छिपा कर रक्खूँ। पिताजी की पैनी दृष्टि से मुरझायी कली की म्लान आभा छिपायी न जा सकेगी।"

ज्योंहीं श्वेतपद्मा आश्रम में पहुंची, माता ने प्रश्न-सूचक मुद्रा से देखते हुए कहा—"कहाँ थी अब तक, श्वेतपद्मा ?"

"वन में बैठी हुइ चाँदनी देख रही थी, माँ !"

"क्यों, नींद लग रही है ?" दुलार भरे स्वर में मां ने कहा "अब आश्रम की याद आई ?"

"ऊँहूँ" अधखिली चाँदनी सी मुसकुरा कर श्वेतपद्मा बोली—मां आज मैं तुम्हें एक बात बताऊँगी। तुम्हें याद है ! गत वर्ष प्रेम-नगर का राजपुत्र इसी आश्रम में आकर हम लोगों का अतिथि बना था।"

"हाँ, हाँ, मुझे अच्छी तरह याद है। उस राजकुमार ने एक हिंसक भालू का शिकार भी किया था। हाँ' उस दिन वह थका था और एक रात्रि आश्रम का बसेरी था।"

"बस, बस ! वही मां ! सुनती हूँ उसका नाम है शक्तिवान ! आज इसी सामने की वन-स्थली पर आया था। मैं बैठी बैठी पक्षियों का नीड़ में बसेर लेना देख रही थी। वह मेरे सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसने मुझे पहचान कर आदर से सम्बोधित करते हुए बोला—"ऋषि कन्या ! शक्तिवान हूँ मैं ? शायद ही पहचान सको। एक दिन मैं तुम्हारा अतिथि बना था।"

मैंने स्वागत करते हुए कहा—"चलो राजकुमार ! आज मैं पुनः तुम्हारे आतिथ्य से अपने को अहोभागिनी समझूँगी !"

"किंतु मां ! वह चट्टान की भाँति अविचल खड़ा रहा। हाँ, उसकी दृष्टि में हलचल थी। वह किसी निश्चय को एक बार फिर से दुहरा रहा था तनिक विलम्ब पश्चात् वह मेरी ओर दृष्टि घुमाकर बोला—"आज मैं आज तुम्हारा अतिथि न बनूँगा, ऋषि पुत्री ! फिर भी तुमसे........"

वह रुक सा गया। मैं बोल उठी—"कहो राजकुमार ! मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?"

"एक जीवन भर का प्रयोजन है। क्षण दो क्षण का नहीं।"

वह चुप हो गया। मेरी ओर देखने लगा। मैं भी उसे देखती रही। फिर मैंने पूछा—"राजकुमार समझी नहीं तुम्हारा तात्पर्य। मैं तुम्हारी कौन सेवा कर सकती हूँ।"

"माँ !" वह अपनी दृष्टि में विद्युत जैसी आकर्षण लिये मेरे सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसने अपने हाथों में मेरा हाथ पकड़ लिया। पल-भर को मुस्कुराहट के बदले में राजकुमार अत्यन्त गम्भीर मुद्रा से याचना करते हुए बोला—"मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने के लिए आया हूँ। बोलो ! श्वेतपद्मा ! मेरे साथ चलोगी ?"

मैं राजकुमार की बात सुनकर स्तंभित रह गयी माँ ! पर वह उचित-अनुचित के विचार से अलग सा बनकर पुनः बोला—"श्वेतपद्मा ! तुम्हें चाहता हूँ, जीवन-सङ्गिनी बनाऊँगा और तुम्हारे सहवास में अकल्पित सुख भोगूँ।"

"माँ !" श्वेतपद्मा क्षण भर के लिए रुक गयी पर पुनः सम्पूर्ण प्रसङ्ग

मां के समक्ष बतला कर अपनी शयन-कुटी में जाने लगी। मार्ग रोककर मां ने कहा—"चलो बेटी ! फलाहार कर लो। तुम्हारे पिताजी अब तक तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे थे। अभी भगवान को भोग लगाकर वे स्वयं फलाहार से निवृत्त हुए हैं।"

श्वेतपद्मा माता के आग्रह से प्रभावित न हुई। वह बोली—"आज निराहार शयन करूँगी। मुझे भूख नहीं, प्यास नहीं।

माता के बगल से निकल कर श्वेतपद्मा अपनी शयन-कुटी में जा पहुँची। और माता चुपचाप वहाँ से लौटकर साधु श्रीवत्स के पास चली आयी। श्वेतपद्मा की माता के विचारों में आज की घटना से अचानक तूफान उठ खड़ा हुआ। श्वेतपद्मा लड़की की भाँति नहीं, वरन् एक सजीव नारी की प्रतिमा सी जैसे माता की अविकल विचार धारा में समाकर पूछ रही थी, "मुझे राजकुमार बुला रहा है ? जाऊँ क्या मैं ?"

श्वेतपद्मा की मां के सामने एक प्रश्न वाचक खड़ा था। वह कैसा प्रश्न वाचक है ? "यदि श्वेतपद्मा अविवाहित रहे क्योंकि श्रीवत्स पुत्री के वियोग को सहन नहीं कर सकते, क्योंकि श्रीवत्स चाहते हैं कि यदि सन्तान लौकिक बन्धनों के संस्कार को न स्वीकार करे तो कल्याण-पथ पर अग्रसर होने में निर्बन्ध आत्मा अपने आप बढ़ जावेगी।"

कुछ भी हो, वह पति के एकान्त में कर्तव्य की पुकार लेकर जा खड़ी हुई और श्वेतपद्मा निराहारिणी बनकर सो गयी।

× × ×

उक्त घटना को व्यतीत हुए सप्ताह बीत चला था। श्वेतपद्मा के जीवन में अशान्ति की हलचल बढ़ती जा रही थी। वह अपने प्रेम-द्वार पर खड़े प्रथम प्रेमी को मन ही मन स्वीकार कर चुकी थी। उसे अन्य किसी की आवश्यकता न थी। उसकी गति-विधि उसके विचारों पर ही निर्भर करती थी। श्वेतपद्मा के विचारों का सार उसके पिता के कानों में पहुँच गया था और सच बात तो यह है कि साधु श्रीवत्स से अपनी इकलौती सन्तान का पीड़ा कैसे छिपाई जा सकती थी।

अन्य दिवसों की भाँति आज भी श्वेतपद्मा चाँदनी के नीचे आकर

बैठ गयी। वह डूबी हुई मनः स्थिति पर विचार कर रही थी किन्तु सम्पूर्ण भावनाओं और विचारों को पलटने के बाद भी श्वेतपद्मा अपने पर मुसकुराती हुई अपने को प्रशान्त नहीं बना पाती थी। उसका शुभ्र राजकुमार शक्तिवान के साथ जा चुका था। सहसा किसी ने श्वेतपद्मा के कन्धों पर बाहें रखते हुए कहा—"किसके सोचमें डूब रही हो।"

श्वेतपद्मा ने ज्योंहीं दृष्टि घुमाकर देखा, हँसता हुआ राजकुमार शक्तिवान उसे पीछे से प्रेम की चिकोटियों में काट रहा था। चाहिए क्या था? यही न! तो वह स्वर्ग-सुख आकाश-कुसुम गिरने जैसा श्वेतपद्मा को अनायास ही प्राप्त हो गया। वह पीला रोगी जैसा मुखड़ा मिलनोन्माद की लालिमा से खिल उठा।

कुछ ठिठकते और पहचानते हुए श्वेतपद्मा बोली—"परदेशी राजकुमार! तुम तो चले गये थे न!"

"तो क्या करता? आने जाने में ही क्या है? आऊँगा और जाता रहूँगा।"

श्वेतपद्मा तृषित सी शक्तिवान को देखती हुई बोली—"बातों में ही तुमने एक व्यापार बना डाला। मैं अपने से समझकर चलने को कह रही थी पर तुम्हारी याचना ने मुझे कहीं का न रक्खा!"

"क्यों क्या हुआ, ऋषि पुत्री! प्रसन्न तो हो न!"

"वह तो तुम छीन कर ले गए।"

"मैं कोई डाकू नहीं, कोई जादूगर भी नहीं।"

"दोनों डाँकू भी और जादूगर भी।"

"कैसे?" मुस्कुराते हुए शक्तिवान ने पूछा।

श्वेतपद्मा नेत्र भर कर शक्तिवान को देखने लगी जैसे वह अपनी दृष्टि द्वारा कह रही थी, "ये मुझसे न पूछो।"

राजकुमार बोला—"श्वेतपद्मा! यह तो मानना पड़ेगा कि तुम्हें भी मेरी आकांक्षा है?"

"तनिक भी न थी राजकुमार!! यह तुमने मेरे हरे-भरे हृदय को झुलसाने के हेतु उत्पन्न किया है? मैं वनवासिनी! मैं क्या जानती, प्रेम

क्या है ? क्या है दो उलझी दृष्टियों की मौन वाणी। एक साधारण सी आँख मिचौनी में तुमने इतना महंगा सौदा खरीदा।"

"क्या इसके लिए तुम्हें दुख और पश्चात्ताप है ?"

"जो कुछ हुआ, वह न होने के बराबर है।"

अब झिझक छोड़ कर श्वेतपद्मा राजपुत्र शक्तिवान् के सहारे खड़ी हो गयी और स्नेह-अभिषिक्त स्वरों में बोली, "राजकुमार ! तुम आज अचानक कैसे आ गये ? क्या तुम्हें भी मेरी स्मृति सताती है ?

"अवश्य भद्रे ! मैं जो तुम्हें प्राप्त करने की प्रतिज्ञा ठान चुका हूँ।" तुम्हारे आकर्षण का प्रथम-मोह मुझे तभी भ्रमित कर रहा था, जब मैं प्रथम बार तुम्हारा अतिथि बना था। तत्पश्चात् भी मैं यही समझता था कि भावनाओं का तूफान एक दिन दूर हो जायगा। मैं राजसी वेश त्याग कर जगत में क्षुद्र-प्राणी की भाँति उन्मुक्त विहार करने के लिए पितृ-गृह से निकल पड़ा। क्या पता था, मुझे, कि मेरे अन्तर में जो प्रेम-स्फुलिङ्ग क्षणभर पूर्व चमके थे, वे जीवन की होली जलाने पर तुल जायंगे। मैंने तुम्हारा द्वितीय दर्शन इसी घाटी की नव-विकसित पूर्णमासी की चाँदनी में किया। इच्छा हुई, प्रकट होकर तुमसे प्रेम-दान मांगू किन्तु इस रहस्य को अपने मित्र से छिपाये रखना चाहता था इस हेतु तुम्हारे समक्ष न उपस्थित हो सका।

श्वेतपद्मा शक्तिवान् की सारी बातें बड़े मनोयोग पूर्वक सुन रही थी पर ज्यों ही शक्तिवान क्षण भर के लिए रुका, वह एक सर्द श्वास छोड़थी हुई बोल उठी—"राजकुमार इतना प्रकट प्रेम न करो। मेरे हृदय में ये बातें काँटे की तरह खटकेंगी। तुम्हारा प्यार परदेशी का प्यार है। तुम्हारा पल भर का साक्षात्कार वियोग की अनगिनती घड़ियों में पके हुए व्रण की तरह कसक उठेगा। जानते हो तुम कि हम दोनों के सुखद-मिलन की कभी अनमोल घड़ी उपस्थित भी होगी, या नहीं।"

शक्तिवान् बोला—"हमारे चिर-मिलन की घड़ियों को उपस्थित होना पड़ेगा प्रिये !"

शून्य आकाश की ओर दृष्टिपात करती हुई श्वेतपद्मा बोली—"देखो

राजकुमार ! क्या होता है। आज तुम निर्जन वन में भटक रहे हो, इस हेतु यह क्षणिक मिलन एक उन्माद की भाँति हमारे अन्तःकरण की सारी चेष्टाओं को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। कल जब तुम नगर वासी बनोगे, तब इन शून्य कछारों की साधारण सी चिन्ता भी मन में न उत्पन्न होगी।

"क्यों !"

श्वेतपद्मा राजकुमार के नेत्रों से नेत्र मिलाकर चुप हो गयी। राजकुमार श्वेतपद्मा का हाथ अपने हाथ में लेते हुए बोला—"प्रिये ! कल की याद में आज के सुख-सपनों को व्यङ्ग न बनाओ। निरन्तर जलते कुढ़ते रहने की अपेक्षा क्षण भर का यह सुखद मिलन कितना मूल्यवान है।

"लो आओ, जी भर कर मुझे देख लो, अपनी ललक बुझा लो। फिर न जाने कब तक मिलना हो।"

श्वेतपद्मा शक्तिवान की उँगली का सहारा लिये सम्पूर्ण वन-स्थली की शोभा को देख-देखकर आनन्द-मग्न हो उठी।

वह बोली—"प्रिय ! आज की रात सदैव स्मृति-पट पर उज्वल चमकती रहेगी—कैसा अच्छा होता मेरे जीवन की सम्पूर्ण रात्रियाँ तुम्हारे सुखद सहवास में व्यतीत होतीं।"

राजकुमार कुछ खिन्न सा हो उठा। श्वेतपद्मा ने उसकी विचलित होती हुई मुख-मुद्रा देखी। वह लाजवन्ती सी वियोग के दुखद-स्पर्श से सिहर उठी। बड़े प्यार से पीड़ा भरे बोल में वह बोली—"तुम अपने को, अपनी भावनाओं और हृदय में उठनेवाले हलचलों को मुझसे छिपाते हो ? क्या ऐसी बात है जो तुम्हारे खिले हुए मुखड़े पर विषाद की आभा सी छा जाती है।

नेत्रों में आँसू भर कर राजकुमार बोला—"मेरा बोझ तो उतर चुका। मैं जान गया कि तुम्हारे हृदय का आसन मेरी प्रतीक्षा में सदैव रिक्त रहेगा। तुम मेरे बिना जलोगी, दुख पाओगी। अन्तर्पीड़ा की आँच से उबलते हुए गर्म आँसू हृदय-रक्त पी कर भी तृषित ही रहेंगे ?

"किन्तु क्यों राजकुमार ! अभिशापों की बदली से जीवन छाया ही रहेगा ?"

"कुछ दिनों तक तो अवश्यम्भावी है, प्रिये ! मैं अनिवार्य को रोक कैसे सकता हूँ ।"

श्वेतपद्मा का हृदय दहल सा उठा । "उफ् इसी को पुरुष कहते हैं जो परिस्थितियों की कठोरता में घबड़ा नहीं सकता ।" प्रत्यक्ष में श्वेतपद्मा बोली—"परदेशी पीतम ! जाना ही अनिवार्य है तो जाओ । मैं तुम्हें रोक कैसे सकती हूँ ? मेरा वश भी क्या है ।"

श्वेतपद्मा की उन बेवस नेत्र-प्यालियों में प्रिय-वियोग की व्यथा छलकने लगी । ढलते आँसुओं को आँचल से पोछती हुई वह बोली—"अब मैंने जाना प्रेम क्या है ? राजकुमार ! तुम दो पल के लिए विरह का अभिशाप देने आये थे । तुमने मेरी हँसी छीनी, मेरी दृष्टि में समाये रहने के लिए । अच्छा होता, यदि तुम विरह और जलन की पीड़ा अपने साथ ही लेते जाते ।"

"वह तुम्हारे प्रथम मिलन के पश्चात् से ही हमारे साथ रह रही है । यह न समझना कि मैं दर्द से खाली हूँ या रहूँगा । आज कह लो जो तुम्हें मुझसे कहना हो ।"

श्वेतपद्मा बनावटी हँसी हँसती हुई बोली—"तुम सुन सकोगे, जो मैं कहूँगी ।"

"अवश्य, श्वेतपद्मा ?"

"यदि मैं कहूँ कि क्षण भर के लिए भी मुझसे दूर न भागो, तब !"

"मैं रुक तो जाऊँगा किन्तु मेरी कर्तव्य विमुखता पर सब हँसेंगे ! प्रेम के नाम पर कर्तव्य की अवहेलना नहीं की जा सकेगी । कर्तव्य के लिये जीना और उसी के लिए मरना होगा । प्रेम की अविरल अजस्र धारा का दर्शन कर्तव्य पालन द्वारा ही होगा ।"

"तब जाओ मेरे सुभग सनेही ! मैं तुम्हारे कर्तव्य-पथ पर रोड़ा बन कर न अड़ूँगी । तुम जीवन संग्राम में विजयी बनोगे, तभी मेरे प्रेम की जीवन-प्रद धारा से तुम्हारा हृदय लहरायेगा ! मैं तुम्हें हंसते हुए विदा

करती हूँ किन्तु जाने के पूर्व अपने कर्तव्य की रूप-रेखा का साधारण सा परिचय मुझे भी देते जाओ।

"परदेशी राजकुमार ! कर्तव्य की मीमांसा बड़ी गूढ़ है। 'क्या करना और क्या न करना' की बात पर बड़े बड़े पण्डितों को भी मोह ने फंसा डाला है। तुम्हारे कर्तव्यों का अन्तिम निष्कर्ष क्या है ?"

राजकुमार ने अनुभव किया जैसे वनवासिनी प्रेयसी गरिमामयी है। वह थोड़े ही में बोला—"प्रिये ! लोक-कल्याणार्थ आत्मोत्सर्ग ही महामहिम कर्तव्य का अन्तिम निष्कर्ष है। इसी के साधन में परम कल्याण निहित है। मैं कर्तव्य के विषय में केवल इतना ही जान सका हूँ।"

श्वेतपद्मा अपनी नत-दृष्टि द्वारा कभी कभी राजकुमार को देख कर सहम सी जाया करती थी। वह समझती—'राजकुमार नवयुवक है प्रेम और आत्म-निर्भरता के सहारे जीवन सङ्घर्ष में लीन है। वह प्रेमी और वीर हो सकता है किन्तु कर्तव्य-दर्शन का ज्ञान शायद उसे कुछ न हो।" किन्तु कर्तव्य मीमांसा की छोटी सी परिभाषा में महान् सत्य का सम्मिश्रण देखकर वह चकित सी हो उठी—

शक्तिवान बोला—"प्रिये ! हम सुख की खोज में निकले हैं। हमें ऐसा महान् सत्य चाहिए जिसके प्रकाश में जीवन के सारे कलुष दीख पड़े, जिन्हें हटाकर जीवन की चादर को साफ और सुथरा रख सकें। हमारे जीवन के भीतर घुसी हुई आन्तरिक हिंसा और छल-कपट ही तो संसार को दूषित बना रहे हैं। हम चाहते हैं कि सिद्धार्थ की भाँति गली-गली में विषमता को दूर करने के लिए, सत्य अहिंसा एवं न्याय का प्रचार करें।"

श्वेतपद्मा शक्तिवान् को मन ही मन आशीर्वाद देती हुई प्रकट रूप में बोली—"चलो, राजकुमार ! मेरे ऋषि-पिता का आशीर्वाद भी अपने साथ ले लो।"

राजकुमार कुछ सोचने सा लगा किन्तु श्वेतपद्मा ने ही बाधा दी—"चिन्ता न करो, पिताजी हमें तुम्हें साथ देखकर अप्रसन्न न होंगे।"

हम दोनों ने एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से अपनाया ही है, कोई पाप तो किया नहीं।"

राजकुमार श्वेतपद्मा के साथ ही साधु श्रीवत्स की कुटिया में जा उपस्थित हुआ। श्वेतपद्मा ने कहा—"पितृ देव! राजकुमार शक्तिवान् आपके चरण-स्पर्श से कृतार्थ होने आये हैं। वे सप्ताह भर पूर्व एक बार और आये थे।"

साधु श्रीवत्स अधमुंदी पलकों में नींद से भरे झूम रहे थे। श्वेतपद्मा की वाणी ने सजग कर दिया। चाँदनी में खड़े शक्तिवान ने ऋषि के चरण-स्पर्श के साथ ही अपना मस्तक भी झुकाये रक्खा। साधु ने आशीर्वचन देते हुए कहा—"राजकुमार! उचित ही हुआ जो तुम आ गये! आते भी क्यों न! मैं मन ही मन प्रतीक्षा कर रहा था।" श्वेतपद्मा अतिथि के लिए फल और दूध लाने चली गयी "अहोभाग्य मेरे!" शक्तिवान बोला "मैं किस सेवा के योग्य हूँ!"

साधु बुदबुदा कर मुसकुरा पड़ा, "किस सेवा के योग्य?" किन्तु प्रकट में वह बोला—"राजकुमार! तुम्हारी योग्यता मैं कैसे कहूँ! सुना है, श्वेतपद्मा तुम्हें प्रेम करने लगी है।...........मैं जीवन में हँस कर खेलने के लिए उसकी इच्छा के अनुकूल साथी खोज रहा था। प्रभु ने अपने आप तुम्हें श्वेतपद्मा के लिए भेज दिया। बोलो तुम श्वेतपद्मा को, मेरी आत्मा के प्यार की प्रतिमूर्ति को स्वीकार करोगे?"

साधु तीक्ष्ण दृष्टि से राजकुमार को देखने लगा। शक्तिवान का श्रद्धा से नत हुआ मस्तक उन्नत हो उठा। वह बोला—"परम साधु! आपके प्यार की प्रतिमा को पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। साथ ही उनके साथ आपके जीवन के महामंत्रों को सीख भी सकूँगा। क्योंकि श्वेतपद्मा के अन्तर में ज्ञान का महान् सागर उमड़ रहा है।"

"इसमें सन्देह नहीं राजकुमार! अठारह वर्षों से मैं उसे सुखी बनने और बनाने के उद्योग में केवल मात्र ज्ञानार्जन कराता रहा हूँ। उसकी दृष्टि से ओझल रहने वाली अपक्की दुनिया और उसका मोहक विलास श्वेतपद्मा को नहीं डिगा सका है। समूह और समाज के भीतर महत्वशाली

जीवन की चर्चा से लेकर शास्त्रों और उपनिषदों का ज्ञान तक श्वेतपद्मा को प्राप्त है। वह तुम्हारे जीवन में धैर्य, धर्म, मित्र और प्रिया की भाँति साथ देगी। मेरा भी आशीर्वाद है शक्तिवान! तुम उसका बल पा कर चमकोगे और आत्मस्थिति को प्राप्त करोगे।"

साधु श्रीवत्स की बातें समाप्त होते ही श्वेतपद्मा दूध और फल लिये पहुँच गयी। वह मधुर स्वर में बोली—"पिता जी! राजकुमार के लिए फलाहार लायी हूँ।"

"तो दो न बेटी! देखो, तुम दोनों कितने परिचित से भले लगते हो। श्वेतपद्मा! अपनी सेवाओं से राजकुमार को कभी अप्रसन्न न करना।"

श्वेतपद्मा लजवन्ती सी सिकुड़ने लगी किन्तु इस अप्रियता को हटाने के लिए साधु श्रीवत्स स्वयं उठकर चल पड़ा। श्वेतपद्मा के रोकने पर भी न रुका।

श्वेतपद्मा प्रसन्न मन से शक्तिवान् को फलाहार कराती हुई अपने साधु पिता के साथ हुए सम्भाषण को पूछने लगी। मुसकुरा कर सारी बातें कहते हुए राजकुमार बोला—"भद्रे! मैं धन्य हूँ। तुम्हारे पाने की आशा के साथ ही साधु पिता का आन्तरिक आशीर्वाद प्राप्त करने में भी समर्थ हुआ हूँ। अब तुम्हें प्राप्त करने में कोई बाधा मेरे सम्मुख नहीं टिक सकती।"

राजकुमार का गर्व देख कर श्वेतपद्मा बोली—"यदि मैं ही तुम्हें स्वीकार न करूं तो ....।"

"यह असंभव है प्रिये! मैं तुम्हारे जीवन की अन्तिम श्वास तक तुमसे विलग न हो सकूँगा। अपने अधिकारों का कभी अनुचित प्रयोग भी न कर बैठना।"

श्वेतपद्मा दर्दभरी वाणी में बोल उठी—"मेरे अधिकारों की बात जाने दो। कहीं तुम्हें ही मनचले सपनों में मेरी स्मृति न रहे तब....। तब...........मेरे लिए यह जीवन मिथ्या सिद्ध होगा। याद रखना राजकुमार! ये बातें वाणी के स्वर में हृदय बोल रहा है। तनिक इस भाषा को समझना। भूल न जाना क्या कहूँ!"

राजकुमार फलाहार से निवृत्त हो कर सतृष्ण नेत्रों से श्वेतपद्मा को देखता हुआ बोला--"प्रिये ! तुम्हारे विरह की पीड़ा लेकर विलग हो रहा हूँ। मुझे इस व्यथा के सहने का बल मिले।"

शक्तिवान की हथेली को चूमते हुए श्वेतपद्मा इतना ही कह सकी--"जाओ प्रियतम ! साधना पथ में प्रतीक्षा करते हुए प्रेम-पुष्पों को आँसुओं से तर कर रक्खूँगी। तुम अपना उपहार आ कर ले लेना!"

गला भर आया। आँसुओं की सरिता में जीवन निमग्न हो गया। राजकुमार श्वेतपद्मा को हृदय से लगाते हुए उस चाँदनी में विरह मग्न होकर अपने वास-स्थल की ओर लौट आया।

× × ×

मार्ग में चलते हुए शक्तिवान् बोला--"साधु मित्र! योगिराज, हम दोनो कहाँ चल रहे हैं।"

"जहाँ भाग्य ले जाय।"

"कब लौटेंगे ?"

"अवधि नहीं।"

"अर्थात शायद लौटें, या न लौट सकें ?"

"अवश्य राजकुमार! हम प्रतिक्षण मृत्यु के कराल-दाढ़ में पड़े क्रीड़ा कर रहे हैं, क्या पता कब पिस जायँ।"

"हाँ सच है, योगिराज!" शक्तिवान कुछ गम्भीर हो उठा। आज उसे अपनेपन की पीड़ा में बड़ी छटपटाहट का बोध हो रहा था। एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए वह बोला--"योगिराज! आज की प्रजा-सत्ता के सूत्रधार अवश्य ही योगी हैं और उनके एकतन्त्रवाद के कुचलने की वीभत्स लिप्सा में जन-युग का सर्वोदय भी है। मैं कभी कभी कांप उठता था, अपने पूर्वजों की रोमञ्चकारी त्याग की अमर कथाएँ सुन कर, जब वे अपने राज-कोष की कौड़ी कौड़ी लुटाकर भी प्रजा-पालन के पवित्र कार्य से च्युत नहीं हुए और एक दिन आज! जब प्रजा ईति भीतियों से व्याधि-पीड़ाओं से और सबसे बढ़कर अकिञ्चनता की भेंट चढ़ चुकी और महलों से घिरी बस्ती में वह प्रजा अनाथ की भाँति लूट ली गयी। शासकों की

धन-लिप्सा ने उसे बरबाद और उजाड़ दिया, तब वह अपनी दुरवस्था देख कर हुङ्कार कर उठी। आज वह हम शासकों को डाकुओं से भी नीच समझती है। हमारे इस प्रकार महान नैतिक पतन का दायित्व भी हम पर ही है। रक्षक बनकर भक्षक का कार्य करने वाले भी हम ही तो हैं ?"

"आज बड़े बड़े सिंहासन और ऊँचे ऊँचे किरीटों की सञ्चित सम्पत्ति प्रजा के ही खून-पसीने की कमाई है न ! क्यों न हम प्रजा को वापस दे दें या उसकी उन्नतियों के प्रोत्साहन में व्यय करें।"

"अच्छा ही तो है" दृष्टि पसार कर शक्तिवान बोला—केन्द्रीय सत्ता एकतंत्र की बिखरी हुई समस्त भू शक्तियों के पोषण का अधिकार छीन-कर एकतंत्रवादियों के अस्तित्व को उनके जीवन तक बचा रही है अन्यथा वे प्रजा की रोषाग्नि में भस्म हुए तुल्य हैं।"

पलभर के लिए राजकुमार चुप हो गया किन्तु पुनः बोला—मित्र ! भाग्य-चक्र की अमिट लीक मिटाये नहीं मिटती। आज के गगन प्रदेश में विनाश के तारों का प्रबल नृत्य हो रहा है। हम सम्राटों की भी मृत्यु पुकार कर हमें बुला रही है। एक ऐसी भय-जनक स्थिति आ पहुँची है कि नूतन व्यवस्था का जन्म तभी संभव है, जब शोषक व्यवस्था का मूल से ही नाश हो जाय। कर्तव्य के परस्पर विनिमय में सम्पूर्ण जीवधारियों को सुख पहुँचाने का दृष्टिकोण ही न्यायपूर्ण है ! योगिराज ! तुम भी मुझसे सहमत होगे न !"

"अवश्य राजकुमार ! तुम्हारी बातें यथार्थ है किन्तु कभी कभी हम देखते हैं कि ऐसी बातें करते हुए तुम्हें उद्वेग आ जाता है। क्यों बहक जाते हो शक्तिवान ! क्यों ? तुम्हें पुरानी स्मृतियां और उनकी केंचुली में छिपी हुई मदीली तृष्णाओं का अनुभव सता जाता है ? दो ही पथ हैं राजकुमार ! योग और भोग।"

"आज भोग को हमने त्यागा है तो योग में हमारी सम्पूर्ण स्थिति होनी चाहिए ! मैं देखता हूँ, न जाने किन स्मृतियों के अवसाद में डूबे हुए तुम जीवन व्यतीत कर रहे हो। एक बार मैं पुनः सचेत करूँगा कि

यदि राज्याकांक्षा का मोह हृदय के किसी कोने में छिपा हुआ हो तो तुम वापस जाओ।"

"नहीं योगीराज! आने जाने की बात मैं नहीं करता, वरन् अपने पद के मिटते हुए अस्तित्व की बात करता हूँ। अनासक्त होते हुए भी अपने पिता के ऊपर ढहने वाली विपदा को देख रहा हूँ। उनका लौकिक धन-सञ्चय इतना व्यर्थ सिद्ध हुआ कि वह किसी काम न आया। आज उनके पद की महत्ता का सूर्यास्त है। जो कल तक विशेष थे, वे आज नगण्य हैं! धन्य संसार धन्य तेरी परम्परा।"

योगिराज बोला—"निर्मम बनकर सृष्टि और विनाश के खेल खेलो क्या धरा है सम्राट बने रहने और बिगड़ जाने में प्रारब्ध और कर्म के भोग स्वतः ही प्राप्त होंगे। तुम्हें तो केवल वारि-वीचियों में कमल की भाँति विलग स्थिति रखना है। चिन्ता मत करो भविष्य की और भूत के लिए आँसू भी न छिड़को।" शक्तिवान को मित्र के सदाशय-पूर्ण संलाप से बल सा प्राप्त हो गया। वह मुस्कराते हुए बोला—"अच्छी बात है, जल-धार की भाँति बहते ही चलना यदि तुम्हें सुखद है तो मैं अनुसरण भी तो कर रहा हूँ किन्तु भावनाओं के आवेग में बह भी जाता हूँ।"

योगिराज बोला—"युग पलट रहा है, हम आवेगों की टक्करें पाषाण-हृदय बनकर सहते चले जांय, यह अच्छा है किन्तु आवेगों के प्रवाह में स्वेच्छाचारी बनकर बहने में आत्म-पतन, विडम्बना और दुख हैं। सच बोलो, मित्र! तुमने अपने आपको कहाँ खो डाला। तुम्हारे मुक्त भावों में अभाव की ग्रन्थि सी उलझ गयी है। हृदय का रहस्य व्यक्त करो।"

शक्तिवान बोला—"मित्र! राज-सम्पदा और वैभव का अभाव मुझे व्यथित करने में असमर्थ है किन्तु अभाव की ग्रन्थि तो अवश्य उलझी हुई है। मैंने प्रेम-देहरी में चरण रखते ही श्वेतपद्मा के सम्मुख अपना प्रेम-अर्घ्य समर्पित कर दिया। मेरे प्रणयोपाख्यान का यहीं से प्रारम्भ है।"

"अच्छा!" कुछ प्रसन्न होता हुआ योगिराज बोला, "श्वेतपद्मा कौन?"

"अरावली-स्थित साधु श्रीवत्स की पुत्री।"

"क्या उसने स्वयं आकर्षित होकर तुम्हें अपने प्रेम-सूत्र में बांधा? या, तुम्हीं अपने को न रोक सके?"

"प्रेम की ज्योति तो दोनों प्राणों के स्नेह-घृत से ही जली है किन्तु अपनी विरह व्यथा को मुझे ही प्रकट करना पड़ा था।"

"यह बात है" ठहाका मार कर योगिराज बोला—"क्यों न हो! राज-महलों के परित्याग के पश्चात् झोपड़ी ही तो सजानी पड़ती है। सरस प्रेम के प्यालों में भरे हुए हृदय के प्यार को लुटा कर पिलाने वाला कोई मनहर तो चाहिए ही! ठीक किया जो किया राजकुमार!"

वह पल भर सोच कर पुनः बोला, "संभवतः अब आकर्षण तुम्हें न डिगा सकें। मैं निश्चिन्त रहूँगा।"

हृदय का भेद बता कर राजकुमार को एक हलकेपन का अनुभव हुआ। वह मुस्कराते हुए बोला—"क्यों मित्र! प्रेम की हाट में खड़े होकर किसने अपने को बेचा? सच कहो! मैंने अनुचित किया है क्या? मुझे साधु श्रीवत्स का वचन-दान भी प्राप्त हो चुका है। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे श्वेतपद्मा के साथ जन्मान्तरों का प्रणय-सम्बन्ध रहा हो।"

"सचमुच, आश्चर्य की बात है, राजकुमार! यही प्रारब्ध है। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि एक ऋषिकन्या और वह भी श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त तुम्हारे लिए बड़ी उपयुक्त जीवन-सङ्गिनी सिद्ध होगी।"

बातों बातों में भूली हुई श्वेतपद्मा पुनः नेत्र-दोलों पर झूलने लगी। मदमाते जोश में वह बोला—"भूमि के राज्य को त्यागकर प्रेम-साम्राज्य का स्वामी बनना कहीं श्रेयस्कर है। मित्र! श्वेतपद्मा मेरे प्रेम-साम्राज्य की यशस्विनी साम्राज्ञी रहेगी। मुझे विश्व की विभूतियों में यह अलभ्य रत्न प्राप्त हुआ है। इस चिन्तामणि के प्रकाश में जीवन को सुखी रख सकूँगा।"

रात्रि की छाया को बढ़ती हुई जान कर योगिराज विराम-स्थल को खोजता हुआ चलने लगा और शक्तिवान् अनुगामी की भाँति किसी मोहक कल्पना की सुखद अनुभूतियों में डूबता उतराता हुआ अपनी भावना में गड़ गया।

उक्त स्थान राजकुमार की जन्म-भूमि प्रेमनगर से ठीक उतनी ही दूर थी जितनी दूर दूसरी ओर मधुगन्धा का नगर। राजकुमार का वास-

स्थान एक प्रकार से बीचोबीच था एक विशेषता और थी। यह स्थान अरावली स्थित साधु श्रीवत्स की कुटिया के अधिक समीप पड़ता था। योगिराज ने निवास स्थान के सम्बन्ध में भली प्रकार सोच समझ लिया और तब मुस्कराते हुए बोला—"प्रिय सुहृद ! हमने यह स्थान बहुत उपयुक्त चुना है। तुम यहाँ से प्रेम नगर मधुगन्धा पुरी और अरावली की कुटी में अधिक से अधिक एक सप्ताह में अवश्य ही पहुँच सकते हो। क्यों? ठीक है न ! प्रत्येक परिचित स्थान से अधिक दूर नहीं है वरन् उनकी दूरी के सम्बन्ध में एक निश्चित माप जान सकते हैं।"

राजकुमार भी विनोद-प्रिय-हास्य करते हुए बोला—"क्या यहाँ अधिक दिनों तक रुकने की इच्छा है।"

"इसे आप जाने, सरकार !" कुछ व्यङ्ग भरी भावना से वह बोला।

राजकुमार मन ही मन कुछ गुनता धुनता बोला—"ठीक कहते हो, मित्र ! यह स्थान चारों ओर से मध्य में है दूसरे अपनी ममसाल जिस उद्देश्य से गये थे, वह भी अधूरा है। मधुगन्धा को एक बार अवश्य बुलाना पड़ेगा और उसके साथ वेश बदल कर अपने नगर में भी जाना होगा। यह भी आवश्यक है कि प्रेमनगर की संपूर्ण भूमि और उसका आधिपत्य प्रेम नगर की जनता के हाथ हो। यह सारे काम हैं जो स्थायी रूप में एक जगह निवास कर प्रारम्भ करना चाहिए।

योगिराज बोला—"यदि साधु श्रीवत्स की कुटिया अरावली में चल कर रहें तो कैसा हो?"

"वह स्थान उचित न होगा। मधुगन्धा वहाँ पहुँचे न पहुँचे और उसकी उपस्थिति का दूसरा अर्थ भी लगाया जा सकता है।"

"क्यों ! राजकुमार ! मधुगन्धा से डरते हो अथवा उसे इतना तुच्छ समझते हो?"

"यह दोनों बातें नहीं है किन्तु जो तीसरी बात है वह केवल इतनी कि श्वेतपद्मा और मधुगन्धा मेरी उपस्थिती में एक दूसरे से न मिल सकें। यदि अरावली की कुटियों में चलकर रहें तो मधुगन्धा और श्वेतपद्मा का मिलन रोका नहीं जा सकता।"

"अच्छा, हो सकता है कि दोनों प्रेमिकाओं के हृदय में यह बात पैठ जावे कि तुम उनके सम्पूर्णतः प्रभाव में नहीं हो और तब वे तुमसे मुक्त हृदय से न मिल सकें, क्यों ?"

योगिराज परिहास करने लगा किन्तु शक्तिवान् बोला—"ठीक कहते हो, स्त्रियां कभी स्वीकार न करेंगी कि उनके प्रेमिक का प्रेम अन्य रमणी को भी प्राप्त हो।"

"इन दो महान सुन्दरियों में किसे कितना प्रेम दे चुके, राजकुमार !"

शक्तिवान मुस्कुराते हुए बोला—"प्रेम के तराजू और बाट मेरे पास नहीं। कैसे बताऊँ कि किसे कितना प्रेम दिया जा चुका।"

दोनों ठहाके मार मार हंस पड़े। राजकुमार मित्र को हृदय से लगाते हुए बोला—"योगिराज ! बनाया मत करो। भगवान न करे, तुम भी किसी गली में अपना हृदय खो कर चले आओ।"

"रहने दो, क्षमा करो इन बातों से मुझे। कहीं तुम्हारी तरह मैं भी बना तब तो हम दोनों का रक्षक भगवान ही होगा।"

राजकुमार बोला—"क्यों, प्रेम से घबड़ाते हो ?"

"प्रेम' यह प्रेम नहीं शक्तिवान ! अपने फंसाने के लिए अपनी शिथिल भावनाओं का जाल बिछाना है।"

"क्या अर्थ है शिथिल भावनाओं का ?" राजकुमार ने प्रश्न किया।

"शिथिल भावनाओं से अर्थ है प्रेम का, जो स्वयं मानवीय दुर्बलताओं में सब से महान है।"

राजकुमार मुसकुरा पड़ा—जैसे मित्र की प्रेम सम्बन्धी अनभिज्ञता पर उसे कुछ रहस्यमय दुख हुआ हो। वह बोला—"मित्र ! भले ही तुम षटदर्शनों के ज्ञाता बनो, किन्तु प्रेम की सूक्ष्म भावनाओं का हृदयस्पर्शी मधुर सञ्चार तुम्हारे जीवन में अभी नहीं हुआ है।"

"न हो तो भी अच्छा है। कम से कम दूसरे की स्मृति में दीन की भाँति दयनीय बनकर रोया तो न करेंगे।"

राजकुमार बातें करता हुआ एक चट्टान पर मृग-चर्म बिछा कर लेट गया और योगिराज से बोला—"कल जंगली व्यक्तियों को बुला कर दो

चार सुन्दर कुटिया बनवा लो। पास ही कल-कल गान करने वाली पुण्य सलिला यमुना के दुकूल वसन्ती हरियाली में लहरा रहे हैं। हम दोनों यही पर ग्रीष्म एवं चातुर्मास बिता कर तब कहीं चलेंगे।

योगिराज तो ऐसे वास-स्थल के हेतु सदैव अभिलाषी रहता था इस हेतु वह अधिक प्रसन्न होता हुआ बोला—"मैं प्रसन्न हूँ राजकुमार! तुम स्थिर हो कर कुछ समय एकान्तवास का आनन्द उठाओ! यह यमुना का किनारा वृज की गोपिकाओं के प्रेमोछ्वास से आज तक उत्तप्त एवं विरहमग्न है। तुम भी प्रेम-पीड़ा की मधुर अनुभूतियों को जीवन में भर कर इन कछारों में प्रेमोन्मत्त होकर विहार किया करना।"

विचारों से कुछ शून्य होता हुआ राजकुमार बोला—"आसन तो डाल ही दिया है। देखेंगे, कब तक इस स्थान में आकर्षण रहेगा।"

राजकुमार अलसाता सा नींद के झोकों में झपकियाँ लेने लगा और योगिराज आस पास के वनवासियों को बुला लाया और आश्रम के स्थान को चुनता हुआ वनवासियों से बोला—"तुम सब आकर हमारे लिए भी कुटी बना दो।"

वनवासी स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए उस रात चले गये और दूसरे ही दिन एक आकर्षक आश्रम यमुना के किनारे आम्रकुञ्जों के नीचे बना डाला। शक्तिवान और योगिराज वनवासियों के सहवास में अपना दिन बिताने लगे।

राजकुमार शक्तिवान को प्रेम नगर से स्वेच्छा से निर्वासित हुए एक वर्ष व्यतीत हो चुका था। राजकुमार ने वर्ष भर का अधिक समय तपस्वियों की भाँति वन्य प्रान्तरों में बिताया था। थोड़ा समय अवश्य मधुगन्धा की पुरी में बीता था किन्तु वह भी बनैले जीवन की भाँति ही नगर की सीमा के बाहर व्यतीत हुआ था।

इस एकान्त वास का प्रत्यक्ष प्रभाव राजकुमार पर यह पड़ा था कि वह मितभाषी एवं एकान्तवासी बन बैठा था। उसे अपने पद एवं महत्ता की स्मृतियों से कोई अनुराग न रहा था। बनाव ठनाव एवं वेषभूषा में वह बनवासी जैसा ही प्रतीत होता था, किन्तु सब से बड़े आकर्षण की बात

यह थी कि सौम्य स्वभाव के कारण उसका प्राकृतिक सौन्दर्य द्विगुणित हो चला था। सरस एवं सरल मनोभावों की प्रतिछाया मुख में अङ्कित होकर उसके महानता को व्यक्त करती थी। वह अनजाने प्रदेश में निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का श्रद्धा-भाजन बन चुका था। योगिराज का व्यक्तित्व राजकुमार से कम आकर्षक न था किन्तु वह बहुधा जन समूह से अपने को दूर रखनेकी ही चेष्टा में रहता था क्योंकि प्रेम की अभिव्यक्तियों और सम्भावण के हेतु राजकुमार ही उसके लिए सब कुछ था।

इस नवीन आश्रम में निवास करते हुए लगभग सम्पूर्ण मास व्यतीत हो चुका था। ग्रीष्म के उत्तप्त झोंके कुछ ठंढे हो चले थे। आकाश-पथ बादलों के जमघट से घिरा हुआ पावस की सूचना दे रहा था। इन दिनों के बीच मधुगन्धा का सेवक नीलकण्ठ राजकुमार से मिल कर गया था। वह जाते ही मधुगन्धा को नवीन वास-स्थल की सूचना दे चुका था! मधुगन्धा भी राजकुमार की खोज में शशि नीलकण्ठ एवं अन्य दास दासियों के साथ अरावली की ओर बढ़ती चली आ रही थी।

इधर शक्तिवान के पिता उसकी वर्ष भर की अनुपस्थिति से अत्यधिक व्यग्र थे। शक्तिवान अपने माता-पिता का एक मात्र उत्तराधिकारी था। पुत्र के दुसह वियोग में माता सूख कर लकड़ी हो गयी थी। चारों ओर खोज करने वाले भटक रहे थे! राजकुमार वनवासी वेश धारण किए निर्लिप्त और निश्चिन्त जीवन व्यतीत कर रहा था। एक ओर माता-पिता राजकुमार के एकाएक गृह-त्याग के कारणों से अज्ञात थे, दूसरी ओर मधुगन्धा भी राजकुमार की खोज के साथ उन कारणों का ज्ञान कर रही थी जिनके प्रभाव में शक्तिवान ने सुख-साधन एवं विभूतियों का त्याग किया था।

एक प्रकार से मधुगन्धा को शक्तिवान का वास-स्थान तो ज्ञात ही हो चुका था केवल गृह-त्याग का कारण जानना अवशेष था। इस हेतु प्रियतम की खोज में निकली मधुगन्धा पहले प्रेम-नगर पहुँची और शक्तिवान के पिता राजा मलयसेन की राज सभा में अपने आने की सूचना देते हुए, उनसे मिलने की आकांक्षा प्रकट की।

राजा मलयसेन जो प्रायः इन दिनों पुत्र के वियोग में व्याकुल एवं व्यग्र रहा करते थे, मधुगन्धा से मिल कर संगीत सम्भाषण द्वारा मन बहलाव करना चाहते थे। वे मधुगन्धा के इस प्रकार प्रेम नगर में उपस्थित होने से उत्सव मग्न जैसे हो गये और द्वारपाल को मधुगन्धा के बुलाने के लिए भेजा! राजसभा में उपस्थित होती हुई मधुगन्धा राजा मलयसेन पर दृष्टि डाल कर बोली—"महाराज! चिरायु और चिर प्रसन्न हों। दासी शीश झुका कर अभिवादन करती है।"

स्नेह-सत्कार करते हुए मलयसेन ने मधुगन्धा के आने का कारण पूछा। वह महाराज को एकान्त में लेजाकर राजकुमार शक्तिवान् के गृह-त्याग का कारण पूछने लगी किन्तु मलयसेन भी राजकुमार के गृह-त्याग के कारणों से अपरिचित ही थे फिर भी इस दिशा में मधुगन्धा को प्रयत्न करते देख मलयसेन को एकाएक दृढ़ निश्चय जैसे हो गया कि राजकुमार अवश्य ही मधुगन्धा को प्राप्त हो जावेगा।

मलयसेन ने मधुगन्धा से प्रश्न किया—"भद्रे! क्या तुम्हारा राजकुमार से कभी का पूर्व परिचय है?"

हाथ जोड़ते हुए मधुगन्धा ने प्रत्युत्तर दिया—"एक डेढ़ माह पूर्व राजकुमार वेष बदले हुए मेरी ही पुरी में रहते थे। तभी मैंने उन्हें पहचान कर साधारण परिचय तो प्राप्त ही कर लिया था किन्तु इससे भी पूर्व राजकुमार को इन्हीं राज-प्रासादों में देख चुकी हूँ।"

राजा मलयसेन नेत्रों में आंसू लाते हुए बोले—"कितने दिनों से इन राज महलों में प्रसन्नता के दृश्य नहीं देखे गये। वह इतना निष्ठुर सिद्ध हुआ, यह भी एक आश्चर्य है किन्तु मधुगन्धा! यदि तुम्हें भी राजकुमार से प्रेम हो, तो खोज कर एक बार राजभवन में अवश्य लाओ। मैं तुम्हें पुरस्कृत करूँगा।"

मधुगन्धा राजा मलयसेन की शोकातुर अवस्था से कुछ प्रभावित हो चुकी थी। वह जिन कारणों की खोज में प्रेम नगर आयी थी, उन्हें तो न जान सकी किन्तु राजकुमार की खोज में राजा मलयसेन की आन्तरिक भावना जान कर उसे प्रसन्नता ही हुई। वह राजा मलयसेन से विनय पूर्वक

बोली—"मेरा कोई प्रभाव तो राजकुमार पर है नहीं, हाँ अपनी ओर से जन्मभूमि लौट आने के प्रार्थना के साथ साथ आपका सन्देश भी निवेदन कर दूँगी और यथा सम्भव प्रयत्न करूँगी कि वे शीघ्र राजमहलों में आकर उपस्थित हों।"

मधुगन्धा अन्तिम बार अभिवादन कर के राजा मलयसेन के महल से लौट चली। मलयसेन ने मधुगन्धा को आशीर्वाद देते हुए कहा—"भगवान करे, तुम्हारी मङ्गलमय यात्रा सफल हो।"

मधुगन्धा प्रेम नगर में राजा मलयसेन के आग्रह करने पर विश्राम करने के लिए भी न रुकी। वह अपने दास दासियों के बीच उपस्थित होते हुए बोली—"रथ अरावली खण्ड की ओर मोड़ दो।"

मधुगन्धा की अविराम यात्रा पुनः प्रारम्भ हो गयी। बीच में जहाँ कहीं आवश्यकता होती पथ प्रदर्शन का काम नीलकण्ठ करता। केवल चार दिन की यात्रा के पश्चात नीलकण्ठ बोला—"हम सब राजकुमार के आश्रम के बहुत समीप आ गये हैं। उचित होगा कि देवि! केवल आपको साथ लेकर पांव पयादे चलूं।"

मधुगन्धा ने नीलकण्ठ की सलाह मान ली। शशि एवं अन्य दास-दासियों को रथ पर छोड़ कर नीलकण्ठ के साथ वह चल पड़ी। नीलकण्ठ यमुनाजी के किनारे घूमते हुए कुछ ही दूर चला होगा कि राजकुमार की ऋषि-कुटी दिखाई पड़ने लगी। तनिक और आगे बढ़ने पर मधुगन्धा ने स्वयं राजकुमार को भी घने आम्र-कुञ्जों की छाया में अध्ययन करते हुए बैठे पाया।

मधुगन्धा रुक गयी और नीलकण्ठ से बोली—"मैं यहीं ठहरी हुई विश्राम कर रही हूँ। तुम जाकर मेरे आने की सूचना राजकुमार को दो!"

नीलकण्ठ कुटी की ओर चल पड़ा। मधुगन्धा मन ही मन बोली—"यह स्थान तो अरावली की तराई से पर्याप्त दूर है। नीलकण्ठ तो राजकुमार से मिलने का स्थान अरावली बतला रहा था। सम्भव है उससे अरावली में ही भेंट हुई हो—जो कुछ हो।"

वह दूर से ही राजकुमार के दर्शन से तृप्त होती हुई नीलकण्ठ के

पुनर्बार लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने देखा कि नीलकण्ठ राजकुमार को अभिवादन करता हुआ उसके सामने जा कर खड़ा हो गया। दोनों में कुछ क्षण बातें हुईं और पुनः राजकुमार नीलकण्ठ के साथ मधुगन्धा की ही ओर आने लगा।

ज्यों-ज्यों राजकुमार मधुगन्धा के समीप आता जाता था, त्यों त्यों उसके हृदय की धड़कन बढ़ती सी जा रही थी। वह मन ही मन उद्वेग एवं भावुकता के वशीभूत हो कर सोचती कि राजकुमार के समीप आने पर वह क्या कहेगी? कुछ २ लज्जा का आवरण भी उसके मुख पर छा गया था क्योंकि मधुगन्धा के कारण ही उसे मधुगन्धा पुरीका त्याग करना पड़ा था।

धीरे २ राजकुमार मधुगन्धा के समीप आ कर खड़ा हो गया। मधुगन्धा झुक कर राजकुमार के चरणों को स्पर्श करती हुई हाथ जोड़ कर उसके समक्ष शून्य सी खड़ी रही। राजकुमार ने मधुर हास्य के साथ मधुगन्धा से प्रश्न किया—"क्यों भद्रे! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ?"

मधुगन्धा के होंठ प्रत्युत्तर देने के लिए फड़क उठे। वह, लजवन्ती सी सिकुड़ कर बोली—"दर्शनों के लिए उद्विग्न थी, देव!"

नीलकण्ठ वहाँ से हट कर दास दासियों के बुलाने चला गया! राजकुमार को अपने एकान्त में पाकर मधुगन्धा पुनः बोली—"देव! मैं क्षमा-प्रार्थिनी हूँ"—"क्यों मधुगन्धा?" उसी प्रकार विहसती दृष्टि से देखता हुआ राजकुमार बोला।

"इस हेतु कि मेरे कारण आपको पुरी का त्याग करना पड़ा था।"

राजकुमार को पुरी में निवास करने के दिवस एकाएक ध्यान में आ गये। वह प्रश्न करते हुए बोला—"वे सब हमारे हटाने का षड़यंत्र करने वाले कौन थे?"

"वे उसी पुरी के सामन्त और श्रेष्ठी हैं।"

इसके पश्चात् मधुगन्धा ने विरूपाक्ष एवं सर्वश्रेष्ठी सत्यव्रत के बन्दी बनाये जाने तक की सारी चर्चाएँ सविस्तार बतलायीं। सब कुछ सुनने के पश्चात् कटाक्ष करते हुए राजकुमार बोला—"बड़ा अहित किया तुमने,

मधुगन्धा ! एक परदेशी के लिए अपने प्रेमिकों को कारागृह-वासी बना दिया ? क्या उनके प्रेम का अनिवार्य परिणाम यही था ?"

"और क्या हो सकता था, देव ! वे मेरे प्रेमिक नहीं थे और यदि रहें भी हों तो भी मेरा झुकाव उन लोगों की ओर कुछ न था। उनकी तरह प्रेम करने वाली पुरी की सारी जनता है जो किसी पर्व या महोत्सव के समय मुझे देखने आया करती है। किन्तु इन सबको मैं अपना प्रेमी नहीं समझती।"

"क्यों, क्या इस हेतु कि वे तुम्हारे प्यार करने योग्य नहीं ?"

"हाँ, यह कारण तो है ही किन्तु जो सबसे बड़ी बात है वह यह कि वे मुझे प्रेम नहीं करते बल्कि अपनी वासना के प्रेमी हैं जो उन्हें मेरी ओर झुकने की प्रेरणा देती है।"

कुछ चिढ़ाते हुए राजकुमार बोला—"उनके प्रेम का कोई महत्व तुम्हारी दृष्टिकोण में इस कारण नहीं है कि उनकी ओर तुम्हारा स्वाभाविक झुकाव नहीं अन्यथा उन बेचारों को तुम्हारे कपट-षडयंत्र में बंधने का दुर्योग ही क्यों उपस्थित होता।"

मधुगन्धा और क्या कहती मुस्करा कर चुपचाप राजकुमार को देखने लगी। राजकुमार आदर पूर्वक बोला—"आओ मधुगन्धा ! कुटी की ओर चलें। नीलकण्ठ भी वहीं आ उपस्थित होगा।"

मधुगन्धा साथ साथ चल पड़ी। इधर उधर की बातें करते हुए बोली—"राजकुमार ! आप अपनी जन्मभूमि से इतनी दूर क्यों हैं ?"

"क्या हुआ मधुगन्धा ? क्या यह स्थान मेरे रहने योग्य नहीं।"

"स्थान तो सभी उत्तम है देव ! जहाँ रुचि हो, वहीं रह लेना उचित है किन्तु मैं आपके जन्म-भूमि की ओर से आयी हूँ और महाराज मलयसेन द्वारा ज्ञात हुआ है कि सारा राज-परिवार आपके वियोग से अत्यन्त व्यथित है। ऐसा क्यों ?"

राजकुमार कुछ आश्चर्य-मिश्रित दृष्टि से मधुगन्धा को देखते हुए बोला—"क्या तुम प्रेम नगर से होकर आ रही हो ?"

"हाँ देव !"

"मेरे सम्बन्ध में पिता जी से क्या क्या बातें हुईं ?"

"अधिक तो मैं वहाँ ठहरी नहीं, हाँ, जो कुछ ज्ञात हुआ वह इतना ही कि आप बिना किसी सूचना के वर्ष भर से किसी अज्ञात स्थान में रह रहे हैं ?"

राजकुमार कुछ सोचते हुए मधुगन्धा से पूछ बैठा—"प्रेम नगर किसी कार्य वशात् गयी थी या केवल भ्रमण के लिए ?"

"कार्य तो केवल आपको खोजना भर ही था किन्तु आपके अकारण बाहर रहने की स्थिति मुझे भी आश्चर्यमय प्रतीत हुई। इसलिए मैंने अपनी ओर से जानना चाहा कि निर्वासित जैसे जीवन बिताने का क्या रहस्य है ?"

"कुछ ज्ञात हो सका ?"

"कुछ नहीं।" मधुगन्धा ने असफलता सूचक दृष्टि नीची कर ली। शक्तिवान् बोला—"यदि मेरे इस प्रकार बाहर रहने का कारण ज्ञात हो जाय तो तुम मेरी सहायता कर सकोगी ? बोलो !"

मधुगन्धा आवेगों में भरी हुई बोली—"मैं अपना सर्वस्व और अन्त में जीवन तक दे कर चाहूँगी कि अपनी पूर्व स्थिति में रहकर ही आप जीवन का सुख-दुख भोगें।"

राजकुमार मधुगन्धा को तीक्ष्ण दृष्टि से देखता हुआ बोला—"इस का क्या पुरस्कार चाहती हो ?"

मधुगन्धा नीची दृष्टि किये कुछ सोचने लगी किन्तु राजकुमार अधिक समय न खो कर पुनः बोला—"मधुगन्धा ! मुझे प्रत्युत्तर चाहिए।"

वह बोली—"देव ! यह तो एक प्रकार का व्यापार होगा !"

"व्यापार ही सही, कुछ तो स्वीकार करना ही पड़ेगा अन्यथा व्यर्थ में तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता।"

मधुगन्धा ने इधर उधर चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखा तो केवल राजकुमार और उसके अतिरिक्त कोई न दिखा। वह अरुणिमा रञ्जित मुख-श्री लिये हुए गम्भीरता पूर्वक बोली—"इस संसार में आपके प्रेम-

प्राप्त करने के अतिरिक्त और कोई मूल्यवान भेंट मेरे लिए नहीं। मुझे केवल मात्र आपके प्रेम की आकांक्षा है।"

"कि..........न्तु.......कि.......न्तु तुम्हें भूल न जाना चाहिए मधुगन्धा कि मुझसे प्रेम याचना करना अपराध तुल्य है क्या तुम्हारी याचना को एकबार अस्वीकार नहीं कर चुका हूँ ?"

डरते हुए मधुगन्धा बोली—"अवश्य, देव !"

"तब तुमने प्रेम-याचना का दुस्साहस कैसे किया ?"

"क्या करती तब ? मुझे संसार में किसी वस्तु की कामना नहीं। क्षमा कीजिएगा देव ! मधुगन्धा का कोष अतुल है और सभी वस्तुएँ संग्रहीत हैं। मुझे तो मेरा मनचाहा पुरस्कार चाहिए या कुछ न चाहिए।"

राजकुमार अपने आपको विषम स्थिति में अनुभव करते हुए बोला—"मधुगन्धा ? मैं तुम्हारा पूर्ण उपयोग और सहयोग चाहता हूँ। तुम इसके बदले में मेरा प्रेम चाहती हो या कुछ नहीं चाहती।"

राजकुमार कुछ सोचता हुआ आगे चलने लगा और मधुगन्धा पीछे। राजकुमार को मधुगन्धा की उपस्थिति से जितनी प्रसन्नता हुई उससे अधिक क्षोभ। वह मधुगन्धा को क्या कहे ? इस बार राजकुमार को अनुभव हुआ कि वह मधुगन्धा के साथ सदय व्यवहार करना चाहता है किन्तु जीवन और विचारों की विषमताएँ बाधा बनकर सामने खड़ी हैं। एक ओर श्वेतपद्मा का विशुद्ध समर्पण युक्त प्रेम जिसका शक्तिवान् स्वयं बन्दी है। दूसरी ओर व्यथापूर्ण मनः स्थिति के कारण मधुगन्धा की प्रेम-याचना जो प्रेम के एक बिन्दु में अपनी अतृप्त प्यास बुझाना चाहती है। दोनों समर्पित हैं किन्तु शक्तिवान् केवल श्वेतपद्मा के समर्पण का बोझ उठाना चाहता है। करुण-भविष्य की कल्पना से एकाएक राजकुमार सिहर उठा। वह बोला—"मधुगन्धा ! क्या मुझे प्राप्त करने के विचारों को त्याग नहीं सकती ?"

"जीवन की अन्तिम श्वास तक नहीं।" कुछ दृढ़ शब्दों में वह बोली।

"इस कठोर हठ से तुम्हारा लाभ ?"

इतना ही कि पाप पूर्ण जीवन की केंचुली उतर जायगी। भावी जीवन, रुदन और पश्चात्ताप के आँसुओं से धुल जायगा।"

"ओह! मधुगन्धा तुमने क्या सोचा? बजाय धुलने के आंसुओं और पश्चात्ताप के पङ्क में जीवन गड़ न जाय? मुझे तुम पर दया आती है।"

"क्यों, क्यों? क्या आप मेरे साथ कोई कठोर व्यवहार कर रहे हैं?"

"मैं नहीं जानता मधुगन्धा! मैं क्या अपने साथ कर रहा हूँ और क्या तुम्हारे?"

"जाने दीजिए, मेरे हेतु अपने हृदय में बोझ न रखियेगा। मैं किसी भी परिणाम में क्यों न पहुँचूँ! मेरी जीवन-तरी ऐसी ही है जिसका कोई नाविक नहीं।"

"तुम स्वयं तो हो मधुगन्धा?"

"मैं भी नहीं राजकुमार! मैं तो किनारे का सहारा तोड़कर तूफान और गर्जन में नौका को डाल चुकी हूँ! अब पार लगे या डूब जाय? जो कुछ हो।"

मधुगन्धा धीरे धीरे उदास होने लगी शक्तिवान ने उसके मनोभावों को पढ़ा किन्तु सान्त्वना देने का साहस न कर सका। मधुगन्धा उत्तप्त श्वासों की जलन को अन्तर में ही रोकती हुई बोली—"राजकुमार! आया हुआ दिल लौट सकता तो प्रेम के पवित्र मार्ग पर संसार में निराशाओं की होली न जलती। आप अपने बीमार को अच्छा नहीं कर सकते, यही सबसे बड़ी बीमारी है।"

मधुगन्धा कुछ अधिक गम्भीर होती हुई साहस पूर्वक राजकुमार का हाथ पकड़ कर आम्र वृक्ष के नीचे खड़ी हो गयी और बोली—"राजकुमार! मैं आपसे कुछ कहने और कुछ पूछने ही आयी थी। बात इतनी सी थी कि मैं तुम्हें प्यार करती हूं,बदले में तुम भी प्यार करोगे? आपका प्रत्युत्तर था, और है कि तुम प्यार करती हो, करो। प्यार के बदले में प्यार हमेशा नहीं मिला और मुझे तो कम से कम नहीं मिलना है। न सही। किन्तु भद्र राजकुमार! मेरे साथ चाहे जो व्यवहार करना, हाँ प्रेम-परित्याग की सीख न देना। मुझे एक साथ लोलुपी नर्तकी भर ही न समझना। मैंने

अन्तरात्मा की इच्छा के विरुद्ध यह प्रेम नहीं किया। इस हेतु इसके त्याग का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता।"

शक्तिवान कुछ सहमा सा बोला—"भद्रे! प्रेम तो क्या बुरा है? उसकी पीड़ा और जलन बुरी है। मैं सोचता था, शायद यह रोग तुम्हें न सता सके।"

"नहीं मेरे राजकुमार! प्रेम में मैंने दूसरों को तड़पते देखा और मैंने ही तड़पाया भी किन्तु आज मेरे तड़पने की बारी आ पहुँची है, राजकुमार! चिन्ता नहीं। जो बीतेगी वही झेलूंगी किन्तु केवल एक बात जानना चाहूँगी।"

"वह क्या है?" राजकुमार बोला।

"क्या तुमने किसी को प्रेम ही नहीं किया? क्या तुम्हें ज्ञात है कि जिस हृदय में प्रेम निवास करने आता है, वह उत्तप्त आह के झोंकों से मरु सा शून्य हो जाता है? प्रेम भले ही ईश्वर हो किन्तु क्या तुम्हें अनुभव है कि इश्क की राह में चलने वालों की क़िस्मत फूट जाती है, वे बेघर-बार के होकर उजड़ जाते हैं? काँटों की सेज पर अन्तिम बार मृत्यु ही गम्भीर नींद का प्याला पिलाने आती है। हाँ, जब तक वह मृत्यु उसे आकर अपनी गोद में नहीं उठा लेती, तब तक निराश प्रेमिक के जीवन का प्रत्येक क्षण भस्म होता हुआ व्यतीत होता है। यह सब कुछ होता है। प्रेम चिता की अग्नि से भी अधिक दाहक होता है किन्तु राजकुमार! मरने वाले मौत से नहीं डरते, प्रेम करने वाले बरबादी की राह में चल कर उसे ही जीवन का शृङ्गार स्वीकार करते हैं।"

मधुगन्धा न जाने क्यों शिथिल सी पड़ गयी। राजकुमार भी अनमना हो चला। उधर से नीलकण्ठ रथ के साथ दास दासियों को लिये कुटी की ओर आता दिखलायी पड़ा। मधुगन्धा राजकुमार का हाथ छोड़ कुछ दूर खड़ी हो गयी। दोनों के मनोभावों में अपार व्यथा एवं असह्य पीड़ा नाचने लगी। उदास स्वर में राजकुमार बोला—"मधुगन्धा जाओ! यमुना के शीतल जल में स्नान कर मन एवं शरीर की तपन बुझाओ!"

मधुगन्धा राजकुमार के समीप से हट कर अपने दास दासियों के

बीच एक आम्रवृक्ष के नीचे वास स्थान बनवाने लगी और राजकुमार अपने मित्र योगीराज के पास आकर बोला--"सुहृद ! मधुगन्धा भी हमारे स्थान में आकर रहने वाली है ?"

राजकुमार शिथिल भावनाओं को लिये हुए कुटी में एक ओर जाकर बैठ गया। उसकी दृष्टि में श्वेतपद्मा और मधुगन्धा दोनों ही नाचने लगीं। योगिराज मित्र को इस प्रकार मन मारे देख कर बोला—"समय का उचित उपयोग करो। मधुगन्धा छाया की भाँति तुम्हारा पीछा कर रही है। राजपुत्र होकर इस प्रकार रुग्ण बनने से काम न चलेगा। मधुगन्धा को उचित आदेशों के साथ प्रेमनगर भेजो। वह अपने कौशल से सामन्त एवं श्रेष्ठी वर्ग के विनाश का उपाय करे।"

समस्त दिन एक प्रकार से आश्रम में सन्नाटा सा खिंचा रहा। सन्ध्या होते ही वे सब एकत्रित हुए। शक्तिवान योगिराज एवं मधुगन्धा ने वन में वायु-सेवन के हेतु प्रस्थान किया। राजकुमार दिन भर मौन जैसा ही रहा आया था। बातों के क्रम में परिवर्तन करते हुए योगिराज मधुगन्धा से बोला—"भद्रे ! तुम्हें प्रेम नगर जाना होगा। वहाँ निवास करते हुए वहाँ के सामन्त एवं श्रेष्ठी वर्ग पर बनावटी प्रेम का कपट जाल बिछा कर ज्ञात करना होगा कि क्या वे राजा मलयसेन की छत्रछाया में रहते हुए शोषित जनता की मुक्ति का उपाय करने को तत्पर हैं या विद्रोह की आग में उनकी सम्पन्नता भस्म कर दी जावे ?"

मधुगन्धा ने बाधा दी--"यदि राजकुमार की आज्ञा हो तो मैं जा सकती हूँ किन्तु इस विषय पर मुझे हाल ही में जो ज्ञान हुआ है, वह लाभकारी है।"

"कहो तो" योगिराज बोला। "राजकुमार की आज्ञा ही तो मुझे भी तुमसे कुछ कहने के लिए विवश कर रही है।"

वह बोली--"प्रेम नगर में अपने आप ही विद्रोह की आग सुलग चुकी है। यदि राजकुमार लौट कर वहां शीघ्र ही नहीं पहुँच पाते तो गृह-युद्ध टाले नहीं टल सकता। प्रेम नगर की प्रजा राजकुमार के इस प्रकार निर्वासित जैसी अवस्था में रहने के कारण समझ गयी है कि राजकुमार

को धन-वैभव एवं विलासिता से मोह नहीं। इसलिए प्रजा स्वयं महाराज से आग्रह कर चुकी है कि जब तक राजकुमार उपस्थित न हों, किसी प्रकार की नवीन राज-घोषणा न होनी चाहिए। सामन्त एवं श्रेष्ठी वर्ग अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से महाराज पर प्रभाव डाल कर किसी ऐसी घोषणा की आशा में हैं जिसे आगे चल कर राजकुमार भी न बदल सकें।"

राजकुमार खिन्न मन से बोला—"मधुगन्धा! मैं जिस वैभव को एक बार त्याग कर आया हूँ, उसे कभी स्वीकार न करूँगा। इसी भय से सामन्त एवं श्रेष्ठी वर्ग सशङ्कित हैं कि पिताजी के पश्चात् उनका प्रभाव न रहेगा। किन्तु मेरी धारणा है कि पिताजी भी अधिकारों से चिपके रहना चाहते हैं। उनकी लोलुपवृत्तियों में अर्थ-शोषण भयानक वस्तु है जिसे प्रजा अच्छी तरह समझती है। प्रजा को सत्ता-हस्तान्तरित करने की उनकी बातें थोथी और दिखाऊ हैं। वास्तव में सामन्त एवं श्रेष्ठी वर्ग उन्हीं के विचारों को प्रतीक मानकर प्रजा से झगड़ा करना चाहते हैं। मैं रक्तपात एवं हिंसा को रोकना चाहता हूँ और यह भी चाहता हूँ सामन्त एवं श्रेष्ठी वर्ग का प्रभाव न रहे—साथ ही मेरे पिता के असीमित अधिकार भी छिन्न-भिन्न हो जायं। इसके हेतु मुझे तुम्हारी सहायता आवश्यक प्रतीत होती है।"

"सहायता का वचन तो मैं प्रथम ही दे चुकी। आप कैसी सहायता चाहते हैं?"

राजकुमार विस्फारित नेत्रों से देखता हुआ बोला—"इधर आओ मधुगन्धा!" वह उसका हाथ पकड़ कर एकान्त में ले जाकर बोला—"योगिराज तुम्हें जिस प्रकार समझा रहे थे वह मैंने ही उन्हें समझाया था किन्तु सत्य बात यह है कि मैं तुमसे क्या काम लेना चाहता हूँ, वह मेरे सिवा अन्य कोई नहीं जानता किन्तु बतलाने के पूर्व तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि यदि कार्य पूरा न कर सकी तो भी उस भेद को किसी पर प्रकट न करोगी।"

मधुगन्धा राजकुमार की शपथ खाती हुई विश्वास दिलाकर बोली—

"मैं आपकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए भयानक से भयानक कार्य करूँगी और उस भेद को किसी पर न प्रकट होने दूँगी।"

राजकुमार के नेत्र चमक उठे। मधुगन्धा की बातों पर उसे विश्वास हो गया। वह बोला—"तुम्हें प्रधान सेनापति एवं महाराज मलयसेन को विष देना पड़ेगा। जब तक इन दोनों के प्राण हैं, तब तक प्रजा-सत्ता नहीं स्थापित हो सकती। भले ही गृह-युद्ध छिड़ जाय और हिंसा एवं लूट-पाट से प्रेम नगर नष्ट हो।"

राजकुमार की कठोर बात सुनकर एक बार मधुगन्धा कांप उठी किन्तु अन्ततः वह भी रहस्यमयी रमणी थी। जाने किस भावी आशा की प्रसन्नता ने मधुगन्धा को प्रेरित किया कि वह अपने जीवन पर खेलकर राजकुमार की इच्छा पूर्ण करे। वह राजकुमार की हथेली चूमती हुई बोली—"मेरे प्राण! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगी!"

"बस, ध्यान रहे मधुगन्धा" राजकुमार बोला—"जितना समय मेरे सहवास में व्यतीत करना चाहो, करो, किन्तु यहां से तुम्हें प्रेम नगर ही लौटकर जाना है।"

"जो आज्ञा!"

पुनः राजकुमार मधुगन्धा के साथ आकर योगिराज से बातें करने लगा। इस एकान्त सम्भाषण से योगिराज का माथा ठनका, अवश्य, किन्तु वह स्वयं बोल उठा—"आप दोनों बड़े नीतिज्ञ हैं, भेद की बात पांचवें कान में न पड़े, इस हेतु दूर हटकर चले गये थे।"

मुसकुरा कर मधुगन्धा बोली—"मेरा अपना कार्य था, इसी कारण यहां तक आयी भी हूँ। क्षमा कीजियेगा।"

योगिराज कुछ न कहकर दूसरे प्रकार की बातें करने लगा। इसी प्रकार रात्रि होते ही वे पुनः लौटकर आश्रम में आ पहुँचे। योगिराज सन्ध्या वन्दन में जाकर तल्लीन हो गया और इधर मधुगन्धा राजकुमार के साथ सुखद सम्भाषण करती हुई एकान्त प्रेम एवं दर्शन का सुख लूटने लगी। मधुगन्धा के जीवन में यह अलभ्य समय उपस्थित हुआ था, जिसकी उसे कोई आशा न थी। राजकुमार भी हृदय खोलकर मधुगन्धा को प्रेम

लुटा रहा था। इसी प्रकार वे दोनों अर्द्धरात्रि के पश्चात् एक दूसरे से विलग हुए। एक सप्ताह पश्चात् मधुगन्धा लौटकर प्रेम नगर जा पहुँची।

× × ×

मधुगन्धा को प्रेम नगर के राज-प्रासाद में रहते हुए दो मास से अधिक बीत चुके थे वह महाराज मलयसेन की अनन्य प्रेमिका हो चुकी थी। आज से एक मास पूर्व का वह दिन जब मलय सेन ने मधुगन्धा को अपनी प्रेमिका घोषित किया था, और जब मलयसेन ने प्रजा के पूछने पर मधुगन्धा को अपने प्रेम की अनन्य उपासिका बतलाया था, उस दिन प्रेमनगर की प्रजा ने अपना दायित्व समझ कर राजा मलयसेन से पूछा था—"क्यों ? तुम्हें ऐसी कुलटा स्त्रियों से प्रेम करने का अधिकार कब है महाराज ! जब राजतंत्र के आदर्श राजा राम की अग्नि परीक्षोत्तीर्ण सीता का त्याग करना पड़ा था ? तुम्हीं प्रजा की पवित्र सत्ता के प्रतिनिधि बनने का दम्भ करते हो ?"

किन्तु, मलय सेन ने ललकार कर कहा था—"यह हमारा व्यक्तिगत जीवन है ?"

किन्तु, प्रजा-प्रतिनिधि बोले थे—"आपके व्यक्तिगत जीवन पर प्रजा के अधिकारों की मोहर लगी है।"

"नहीं, नहीं, राजपद स्वतंत्र है, स्वेच्छाचारी है। मलयसेन ऐसेगुरुतर अपराधों को क्षमा नहीं कर सकता।" वह बोला था।

सारी सभा बिजली की तरह कड़कड़ाती राजाज्ञा सुन कर स्तब्ध रह गयी थी। निरङ्कुशता का बोलबाला राजा की हुङ्कार बन कर छाया हुआ था। मंत्री और सभापद कोप उठे थे। सभा भवन में मधुगन्धा राज्य-श्री से विभूषित होकर अपने अपमान का तिरस्कार महाराज की वाणी बन कर, कर रही थी। उनमें से एक प्रजा-प्रतिनिधि बादल की तरह गरज कर कह उठा था—"निरङ्कुश राजा ! तेरा अभिमान धूल में मिला दूँगा।" एक राजपूत की प्रतिज्ञा से भरी तलवार उस महान् जन-समूह में चमक उठी थी फिर भी राजा मलयसेन न लज्जित था, न उद्विग्न। वह उस

व्यक्ति के बन्दी बनाने की राजाज्ञा निकाल कर मधुगन्धा के साथ रंगमहल में प्रेम-भरी वार्तालापों द्वारा अपनी प्रज्वलित वासना की तृप्ति का संयोग मिला रहा था। प्रजा विष की घूंट पी कर अपने अपमान और राजा की निरङ्कुशता से छुट्टी पाने के उद्योग में राजकुमार शक्तिवान् की खोज में पड़ी। तब से लेकर निरन्तर एक माह की अवधि तक राजा मलयसेन मधुगन्धा द्वारा अपनी विषय तृप्ति न कर सका। उसका विश्वस्त सेवक नीलकण्ठ प्रत्येक क्षण उसके समीप रहता था। यह विशेष नियम केवल मधुगन्धा के कारण ही बना था कि उसकी ड्योढ़ी में नीलकण्ठ का प्रवेश निषिद्ध नहीं है।

एक दिन राजा मलयसेन काल की भाँति घूर कर कठोर शब्दों में बोल उठा-—"नर्तकी तुझे मेरी काम-वासना तृप्ति करनी ही होगी।"

"असम्भव महाराज ?"

"तब किस बल पर मेरी प्रेमिका बनने का दम्भ तुझे उत्पन्न हुआ था ? तुझे ज्ञात नहीं कि मैंने परम्परा के आदर्श पर लात मार दिया। मधुगन्धा ! तुझे याद रखना होगा कि तेरे लिये मैं नहीं झुका था, बल्कि प्रेम नगर की सत्ता या उसका एकमात्र प्रतिनिधि राजा ! सच बोल, मधुगन्धा ! फिर तूने इतना बड़ा कपट षडयंत्र क्यों किया।"

"महाराज, क्षमा करें।" वह बोली। "आप एक षोड़षी नवयुवती की उमङ्ग भरी विलासेच्छा को समझ नहीं पाते, मैं क्या करूँ ? मैं तो आपके गले में तभी झूम जाऊँगी जब आपकी मद-भरी दृष्टि प्यास भरकर मुझसे विषय की याचना करेगी" ठोढ़ी में उँगलियां रक्खें मुस्कराती हुई मधुगन्धा बोली।

राजा मलयसेन का क्रोध शान्त हो गया। तथापि वह आज्ञा-सूचक दृष्टि से देखता हुआ पुनः बोला,—"आज की रात मुझे तेरे प्रेम रस से अपनी तृप्ति करना है। आज राजा मलयसेन की इच्छा पूर्ण होकर रहेगी।"

"मैं ऋतुमती हूँ महाराज !"

मलयसेन की आशाओं पर तुषारापात हो गया और पुनः एक माह

की अवधि मधुगन्धा टाल लायी। वह राजा मलयसेन को हास परिहास और गायन-नृत्य में बहला देती और मदभरे शराब के प्यालों और अपनी उत्सुक कटाक्षों के बल पर बेहोश कर देती थी। मन ही मन मधुगन्धा यह भी सोचती कि मैंने राजकुमार का कार्य बहुत सफल कर दिया। सारी प्रजा मलयसेन के विरोध में हैं। केवल सैनिक सत्ता का हिंसाकारी प्रभाव अधिक है, वह मलयसेन के क्षियोन्मुख रहने की अवस्था में अवश्य ही घटेगा। मधुगन्धा यह समझ गयी थी कि राजा के समीप निवास करने में उसके प्राणों को भी भय है फिर भी उसे अपना विषैला प्रभाव सेनापति पर भी उतना डालना था जितना महाराज मलयसेन पर। वह लुक छिप कर सेनापति को राजदुर्ग में ही बुलाने लगी और धीरे धी उसे भी अपने प्रभाव में लेकर समान छलना में दोनों को मसल कर चलने का प्रयत्न करने लगी।

एक दिवस महाराज मलयसेन ने कहला भेजा—"आज एक छोटा सा राजोत्सव मनाया जायगा जिसमें आपके गायन और नृत्य का प्रदर्शन होगा!"

निमंत्रण पाकर मधुगन्धा ने सन्ध्या समय से ही मनोहारी शृङ्गार कर लिया और महाराज मलयसेन के बुलावे की प्रतीक्षा करती रही। राजा मलयसेन उसे लेने स्वयं आये। वे मधुगन्धा का इतना सजीव शृङ्गार देख कर विस्मित-विमुग्ध से लिपट पड़े। उन्होंने मधुगन्धा को गोद में उठा-कर प्यार करते हुए कहा—"मधुगन्धा! आज की रात अन्तिम है। तुम्हें तृप्ति का प्याला पिलाना होगा?"

मधुगन्धा मलयसेन की दृष्टि में मोह का विष डालती हुई बोली—"आज, सचमुच अन्तिम रात है।"

उसकी दृष्टि घूम गयी किन्तु मलयसेन की गोद में लिपटे हुए ही बोली—"महाराज! आज मैं भी अमूल्य-सुरा पान करूँगी। आज हृदय बरबस अनियंत्रित है।" "सच! मधुगन्धा!!" वह प्रौढ़ व्यक्ति न जाने किस मदीली आकांक्षा से सिहर उठा।

"चलो !" वह मधुगन्धा को गोद से उतार कर बोला—"नृत्य-भवन चलें !"

मधुगन्धा माया सी मलयसेन के सम्मुख चल पड़ी। क्षणभर पश्चात् वह भी उसकी प्रतिछाया सा चल पड़ा। नृत्य-भवन में मलयसेन के पहुँचते ही आनन्दोत्सव की किलकारियाँ गूँज उठी। मलयसेन ने अपनी इच्छा प्रकट की, "नृत्य प्रारम्भ हो ?"

मधुगन्धा नृत्य भवन के रंगमञ्च पर क्षणभर के लिए नच उठी। सम्पूर्ण दर्शक तृष्णा में झूम उठे। नूपुरों की रुनझुन ध्वनि से समस्त भवन गूंज उठा। क्षण भर पश्चात् ज्ञात हुआ कि "वह मधुबाला का नृत्य करेगी और मधु बांटेगी। वह स्वयं पियेगी, पिलायेगी, चेतनाहीन होगी और सब को बना देगी।"

मधुगन्धा नृत्य करने लगी। सुवर्ण एवं मुक्तामणियों से जटित मधु-पात्रों में मधु लेकर वह बाँटने लगी। वह केवल नृत्य करती। मधु पीती पिलाती। मूक भावों का नृत्य की भाषा में प्रदर्शन करती। वे सारे राज-पुरुष जो राज परिवार के ही अभिन्न अङ्ग थे, एक प्रहर में चित्र लिखे पुतले चेतनाहीन हो गये। मधुगन्धा ने सब के मन में विलास भावना का सञ्चार कर, आसव के नशे में बेहोश कर दिया।

सभा-भवन के अधिक व्यक्ति नृत्य सम्पूर्ण होने के साथ ही उठ कर चल पड़े केवल महाराज की प्रतीक्षा में सेनापति झूमता हुआ बैठा था। महाराज मलयसेन और सेनापति अर्द्ध-चैतन्य अवस्था में थे। इन पर मूल्यवान मदिरा का स्थायी प्रभाव बड़ी मोहक मादकता के साथ व्याप्त हो रहा था। अङ्ग शिथिल पड़ चुका था किन्तु दुर्निग्रह काम-वासना अपनी आग में अलग जला रही थी। इतना भी बल अवशेष न था कि मधुगन्धा के पास जाकर प्रेम-याचना करें।

रंगमञ्च से हटकर मधुगन्धा विश्राम, स्नान एवं मंदिर-शृङ्गार के पश्चात् पुनः दोनों के पास पहुँची। सारा रंग महल शून्य था। कभी कभी सेना-पति एवं मलयसेन की चटखती हुई अस्पष्ट वाणी मुखरित हो उठती थी। मधुगन्धा नृत्य करते करते थक चुकी थी। किन्तु सब को वासना-विमुग्ध कर, स्वयं नव-जीवन लेकर पुनः आ गयी।

नीलकण्ठ को पुकारते हुए बोली—"यहाँ पर कौन है।"

"मेरे अतिरिक्त कोई नहीं!"

वह आज्ञा-स्वर में बोली—"जाओ, रथ तैयार करो। सारी रात चलना है। मेरी प्रतीक्षा रथ पर ही करना। और सुनो, रथ को नगर के बाहर रोकना मैं आ जाऊँगी।"

रंगमहल में जागृत अवस्था में केवल मधुगन्धा थी। पल भर में जीवन को अन्त करने वाला हलाहल, सुमधुर पेय एवं मदिरा में मिलाकर वह कांप उठी। दो अलग अलग प्यालों में उस मृत्यु के पैगाम-सन्देशे को अन्तर्दृष्टि में पढ़कर मधुगन्धा बोली—"ओह! यह मैं क्या करने जा रही हूँ। दो प्राणियों के जीवन का अन्त? क्या इस विश्वास-घात एवं हत्या से मैं राजकुमार के सहज स्नेह की उपलब्धि कर सकूँगी?"

विष के पात्रों को मणिजटित हेम चौकियों में रखते हुए मधुगन्धा का हृदय आर्तनाद कर उठा। "ओह! प्रेम के नाम पर हत्या? यह प्रेम नहीं, पशुता है। यह प्रेम ईश्वर नहीं है! यह मायावी दैत्य की आसुरी प्रतिहिंसा है?"

जैसे कोई मधुगन्धा की आत्मा में गरज कर कह उठा—"मेरे राजकुमार! मेरे प्रीतम! तुम्हारे हित के लिए हत्यारिनी बन रही हूँ और वह भी तुम्हें जन्म देने वाले राजा मलयसेन की! तुम मुझे प्रेम करोगे अथवा घृणा? कह चुके हो, प्रेम नहीं कर सकते, तो घृणा करना।"

प्रथम प्याली राजा मलयसेन को देती हुई मधुगन्धा बोली—"आज तो आपके विलास की अन्तिम अवधि है न! लीजिए! मुझसे मिलिये। और होठों के भीतर बुदबुदा कर बोल उठी—"मैं जो आपकी मृत्यु हूँ न?"

"अधमुंदी पलकें खोल कर राजा ने प्याली गटगटाली और बोला—"मधुगन्धा! तुम केवल मेरा सम्मान करती हो। प्रधानजी को भी अपने हाथ से पिलाओ।"

"बहुत अच्छा!"

प्रधान क्षण भर पहले स्वयं द्वेष से जला जा रहा था, जब मधुगन्धा

मलयसेन को पिला रही थी। अपनी बारी देख कर वह भी जलते फफोलों को ठंढा करते हुए मधुगन्धा के मादक स्पर्श का सुख पाकर अपनी मृत्यु की घूट पी गया। मधुगन्धा अपना कार्य शीघ्र समाप्त कर अलग से मदिरा के दो दो प्याले पिलाती हुई वीणा की तारों में पीड़ा के उफनते हुए वेग को बहा कर जी बहला रही थी। मधुगन्धा का कपट-जाल पूर्ण सफल हो चुका था। वे दोनों अन्तिम स्मृति के क्षण में मधुगन्धा को समझ पाये थे किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें मृत्यु की अँधेरी छाया में लुप्त हो जाना था। मधुगन्धा निश्चिन्त सी बैठी हुई दोनों की अन्तिम श्वास गिन रही थी। हृदय के अन्दर जो अन्तर्द्वन्द्व मचा था उसे मधुगन्धा रोक सकने में अपने को असमर्थ पाती थी। कुछेक क्षणों में मलय सेन एवं सेनापति के नेत्र उलट गये। हृदय की धड़कन बड़ी छटपटाहट के साथ बन्द हो गयी। मधुगन्धा का हृदय "धक" से कांप उठा---"प्रेम को कलङ्कित करने वाली हत्यारिनी!" कोई उसके हृदय में गरज उठा। वह मन और मुख का भेद जड़चेतन से छिपाये उठी और दोनों को चादरों से ढकती हुई बाहर निकली।

"द्वारपाल! महाराज एवं सेनापति सो रहे हैं। बाहर से चौकसी रखना। मैं अपने महल जाती हूँ।" राजाज्ञा की तरह अमिट बात कह कर मधुगन्धा चल पड़ी।

द्वारपाल रंगमहल का अन्तिम द्वार बन्द कर चौकसी में जा बैठा और मधुगन्धा शून्य अर्द्धरात्रि में चल कर नगर के बाहर प्रतीक्षा करने वाले रथ पर जा बैठी। "नीलकण्ठ!" वह बोली रथसवेग राजकुमार शक्तिवान के आश्रम की ओर चले।"

शशि स्वामिनी की परिचर्या में आ कर डँट गयी। प्रेम नगर को अन्तिम बार प्रणाम करती हुई मधुगन्धा रथ को गतिवान करने का आदेश दे चुप हो गयी।

× × ×

जीवन के अधिष्ठात्र!

एक दिवस तुमने प्रतीज्ञा की थी मुझे अपने साथ ले चलने के लिए

किन्तु तब तुम्हारी प्रतिज्ञा के साथ मेरी स्वीकृति का एक अंश भी मेल न रखता था। कितनी पुरानी घटना है? किन्तु सोचूँ तो तुम्हारे मिलन की प्रथम आकुलता में ही अपना सर्वस्व-समर्पण तुम्हारे नाम कर चुकी हूँ। मैं तुम्हारे सन्मुख अन्तर चीर कर भी इस रहस्य-मय अन्तर-अभिलाषा को कभी व्यक्त न कर सकूँगी। फिर भी तुम्हारी व्यथित लालसा में कितना तीव्र आकर्षण था कि मुझे प्राप्त कर लेने में तुम्हें कोई कठिनाई न हुई? मैं बिक चुकी थी तुम्हारे नाम पर, इसीलिए न? मैंने आकुल-प्रेम के उत्तप्त मर्म को समझा। मैं तुम्हारी दीन-दशा पर द्रवित हुई। मैंने अन्तिम निष्कर्ष यह निकाला कि बिना मेरे सहवास के तुम्हारे जीवन की दयनीय कटुता कभी दूर न होगी। बिना मेरे तुम्हारी छटपटाहट बढ़ेगी। बिना मेरे तुम चैन से जी न सकोगे? कैसी होगी वह जिन्दगी? उन दिनों मैं सोचती थी पर आज समझती हूँ कि तुम्हारा पूर्व जीवन मेरे आज के जीवन जैसा रहा होगा! क्या तुम्हें बताऊँ कि आज मुझ पर क्या बीतती है? मैं एक अन्तर का विक्षिप्त आर्तनाद लेकर प्रकृति के झञ्झावात की भाँति उत्तप्त और अशान्त रहती हूँ। तुम जीवन के भन-चले दिनों में एक दो बार मेरी दृष्टि-पथ पर क्या आये, मुझे मुझसे छीनने की प्रतिज्ञा ले कर आये थे। हुआ जो हुआ। एक जीवन और उसका एक निष्कर्ष, मिलन के सुखद-समारोह के साथ अन्त होना चाहिए। यह क्या है? मैं तड़पती और आँसू बहाती हूँ और तुम्हें पाने की फरियाद तुम्हीं से करती हूँ।

एक अनहोनी सी बात हो चुकी है। मेरे माता-पिता कुसमय ही मुझे त्याग कर चिता की धूलि बन चुके। मेरे दुर्भाग्य की बात है। एक दिन पावस के काले काले डरावने बादल आकाश-पथ पर घिर आये। एक कज्जल की विकराल प्रतिमूर्ति सी अन्तरिक्ष में नाचने लगी। बूँदें गिरी और गरज गरज कर घनघोर घटाएँ बरसने लगीं। सन्ध्या हो चुकी थी। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। दीपका टिकना असम्भव था। एकाएक कड़क कर बादलों का संघर्ष होने लगा। आकाश को फाड़नेवाली स्वर लहरी प्रतिक्षण गूँजती रही। मेरे माता-पिता यज्ञ-कुण्ड में हवन कर रहे

थे। एक ही बार विद्युत के महाप्रकाश के साथ घोर-रव में बादल गरज उठे। मेरी आँखें मिच गईं। मेरे माता-पिता विद्युत प्रहार से जीवन खो चले। मेरा प्यार-दुलार लुट चुका था। मुझे अब तक पता न था। धीरे २ बरसात थम्ही। बादलों का गरजना भी शान्त हो गया। मैं अपनी कुटी से निकल कर ज्योंही पिता की कुटी में पहुँची, यज्ञकुण्ड के अग्नि-प्रकाश में वे दोनों शून्य भाव से पड़े अपने निधन की कहानी कह रहे थे। मैं सिर पीट कर अपने दुर्दिन को देख घबड़ा उठी।

आज मैं मातृ-पितृ हीना एक असहाय और असम्बद्ध स्थिति में हूँ।

राजकुमार! एक बार सोचना! मैं दीन-हीन हूँ, अकेली और अरक्षित हूँ मुझे सहारा चाहिए। मैं दुर्दैव और तुम्हारे प्रेम की मारी हूँ। इस हरे भरे शून्य आश्रम के एकान्त में तुम्हारी तसवीर खड़ी हो कर मुझे झाँका करती है। मैं उसे पकड़ कर हृदय में छुपा लेने के लिए बावली सी चल पड़ती हूँ। मैं अपनी विक्षिप्तता नहीं सम्हाल सकती। ठोकरें खा कर गिर पड़ती हूं, उठती हूं और पीड़ा की बेहोश कर देने वाली थकान से से निर्जीव बन बैठती हूं। हाय क्या इसी सुख के लिए प्रेम-दान माँग रहे थे।

राजकुमार! नहीं कह सकती मैं कि इस प्रेम का भविष्य क्या होगा? कहाँ मैं एक तपस्वी की सन्तान, और कहाँ वे तुम्हारी अनन्य प्रेम-पुजारिणी राजबालाएँ। फूल जैसी उनकी सुकुमारिता, स्नेह-सुगन्ध से सना हुआ प्रेमोच्छ्वास, वैभव में पला जीवन! मैं तो काँटों में चलती हूँ तब भी उफ नहीं कर सकती और वे प्रेमिकाएँ! फूलों में चलती होंगी तो कसक उठती होंगी। वे एक अनन्य प्यार की गोद में पलीं समृद्धकुल की कन्याएँ हैं जिनके खिलने में प्रेम की बूँदों से सींचने वाला माली प्रतिक्षण उत्साह बढ़ाता है। दूसरी ओर मैं अरक्षित जैसी, प्रकृति के सर्द, गर्म और तर झोंकों को सहने वाली। कैसे कहूँ? तुम उनके प्रेम-पाश में बँधकर कहीं मुझे भूल न जाना।

तुम्हें याद हो, न हो प्रिय! शकुन्तला अपने पालक पिता कण्वऋषि के आश्रम में ही दुष्यन्त के समक्ष आत्म-समर्पण कर चुकी थी। वह भी

राज-महलों में जाकर शकुन्तला को भूल गया था। कहते हैं, उसे श्राप था किन्तु मैं समझती हूँ वह श्राप दुष्यन्त के लिए नहीं वरन् शकुन्तला के लिए था। वह अभागिनी प्रिय-वियोग की पीड़ा में छटपटा कर काँटा हो गयी थी। जैसे ही शकुन्तला अपनी दुर्भाग्य-पूर्ण स्थिति से उबरी, उसका प्रीतम उसे स्वीकार कर बैठा किन्तु श्वेतपद्मा का भाग्य निश्चय ही शकुन्तला जैसा नहीं है। नहीं तो, क्यों प्रीतम ! तुम मुझे लेने अवश्य आते।

तुम्हें बुलाने के लिए यह अन्तिम बार पत्र लिख कर भेज रही हूँ। बड़ी कठिनता से तुम्हारे पास तक जाने के लिए एक चर मिल सका है। दया करना, एक बार आना अवश्य ! अभी एक महँगा सौदा बाकी है। तुम आते तो सब कुछ निर्णय हो जाता।

तुम्हारी-श्वेतपद्मा

श्वेतपद्मा ने पत्र लिख कर एक वन-वासी सेवक को राजकुमार शक्तिवान के पास भेजा स्वतः जाकर आश्रम में पली शुक-सारिकाओं के साथ जी बहलाने लगी।

सच है, मनुष्य जी बहलाने के लिए या अन्तर में शान्ति स्थापित करने के लिए पाषाण-प्रतिमाओं से बोल बैठता है, दुख-सुख कहता है और बोझिल जीवन हलका कर लेता है। श्वेतपद्मा भी क्या करती ? शुक सारिकाएँ ही उसकी सङ्गिनी थीं। उन्हीं के साथ दुख का बोझ सम्हाल कर अपना मनोरञ्जन कर लेती थी।

फिर भी उस दिन श्वेतपद्मा वनवासिनी अवस्था में भी असहाय हो चुकी थी। प्रकृति की निष्ठुरता ने दुलार भरी मां बाप की गोद छीन ली कुछ जंगली कोल-भील-किरात जो उसके निष्ठावान पिता को मुनि और गुरू रूप में पूज चुके थे, आज श्वेतपद्मा की रक्षा में तत्पर थे किन्तु श्वेतपद्मा इस प्रकार जीवित रहने से मृत्यु अङ्गीकार करना श्रेयस्कर समझती थी।

राजकुमार शक्तिवान की खोज में विश्वस्त सेवक भेज कर भी वह निश्चिन्त न थी। राजसत्ता से शक्तिवान का कुसमय-वैराग्य महत्व रखता

था। वह जानती थी कि शक्तिवान स्वयं भी उसके प्रेम में आहत हो चुका है, किन्तु फिर भी शक्तिवान को अपने से अधिक कठोर पाती थी। वह यह भी देख रही थी कि संसार के रङ्गमञ्च पर एक श्रेष्ठ, वीर, उदार, एवं दानी जीवन बिताने के सङ्कल्प ने भी शक्तिवान को आततायी एवं लोलुपी पिता से विमुख कर दिया है। इसी कारण वह मुझे मेरे पिता की गोद में छोड़ कर गया है।

श्वेतपद्मा पुनः जीवन के विचारों में उलझ कर शुक-सारिकाओं के पास से दूर हट गयी। मन ही मन बोली—"मैं कितना घोर आर्तनाद कर रही हूँ? प्राणों के दीपक जला कर शून्य मन्दिर में किस निष्ठुर की याद में जली जा रही हूँ। मन्दिर में देवता नहीं, किन्तु मैं स्मृति के तागों में अश्रु बिन्दुओं को पिरो कर माला गूँथ रही हूँ। आह! किससे चिल्ला कर कह दूँ कि तू पल भर केवल एक पल के लिए इस आग को ठंढी करने आ जा। पल भर चैन लेने दे। झुलसी जा रही हूँ। ओ निर्मोही आ कर बचा ले।"

"तू आ जाता, मेरा परदेशी पीतम! देखता कि किस सूनसान में आसन जमाये तेरे नाम की माला जप रही हूँ। बाहर मृत्यु की सी शान्ति जीवन में व्याप्त है किन्तु अन्तस्तल में विषाद का अंधड़ है, विरह का सागर घहरा रहा है। बचा सके तो आ कर बचा ले अन्यथा डूब तो रही हूँ, मेरे कलपने के समय आ और मुझे दर्शन देकर कल पा लेने दे। जीवन सङ्गी! जहाँ कहीं हो, मेरी अन्तरिक्ष में टकराती हुई विरह-पुकार सुन!"

"मेरे जीवन धन! सुन, मैं पपीहे की अतृप्ति भरी भाषा में समा कर अपने जीवन का आर्तनाद सुनाते हुए तुझे खोज रही हूँ। पीड़ा भरे बोलों को सुन कर कांप उठ और चुपके से मेरे पास आजा।

"मैं अब तुझसे विलग न रहूँगी, न तुझे एकाकी जीवन व्यतीत करने दूँगी। हाय! कहाँ पाऊँ। तेरे गले लगूँ और तुझे गले से लगा लूँ!"

इसी भाँति निरन्तर व्यथा में डूबे हुए श्वेतपद्मा के नेत्र बरबस बरसने

लगे। वह बावली सी निराहार जीवन बिताने लगी। बेकली में दिन पर दिन बीतने लगे। एक दिन वह बनवासी सेवक लौट आया। सूखते हुए कण्ठ में मनोतृषा का जल पड़ा।

सूख कर हड्डियों की निर्जीव ठठरी सी श्वेतपद्मा उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसका कलेजा श्वेतपद्मा को देख कर दहल उठा। बन-वासी सेवक बोला—"देवि! मैं कृतकार्य हुआ हूँ। आपका पत्र राज-कुमार को दे चुका और प्रत्युत्तर भी साथ लाया हूँ। वे अधिक से अधिक एक सप्ताह तक अवश्य आवेंगे।"

मानो स्वर्ग सुख मिला, धड़कते हृदय से श्वेतपद्मा ने राजकुमार का पत्र बनवासी सेवक के हाथ से ले लिया और हृदय से लगाते हुए बोली—"सेवक! मैं तुम्हारी कितनी ऋणी हूँ। बोलो, तुम्हारे इन उपकारों का क्या बदला चुकाऊँ? मैं तो सर्वथा अकिञ्चित हूँ।"

श्वेतपद्मा अति कृतज्ञ दृष्टि से बनवासी सेवक को देखने लगी। वह श्वेतपद्मा के चरण-स्पर्श करते हुए बोला—"देवि! हम सारे बनवासी गुरुदेव के चिर-ऋणी हैं। उन्होंने हमें कर्तव्य का ज्ञान देकर हमारे साथ बड़ा उपकार किया है। आप मेरी सेवाओं को बोझ न समझें। गुरुदेव के स्थान पर हमी सब आपके चरण सेवक हैं।"

श्वेतपद्मा मन ही मन सेवक को आन्तरिक आशीर्वाद देती हुई बोली—"सेवक! कुदाल उठाओ और कन्दमूल आदि ले आओ। आज तुम्हारे हाथ का लाया हुआ फलाहार ग्रहण करूँगी।"

"जो आज्ञा" कह कर सेवक चल पड़ा। श्वेतपद्मा राजकुमार का पत्र खोल कर पढ़ने लगी। पत्र पढ़ते पढ़ते स्नेहोद्वेग के कारण बारंबार आंसू छलछला उठते थे और श्वेतपद्मा उन्हें आँचल से पोंछ कर पुनः पढ़ने लग जाती थी। पत्र इस प्रकार था—

"देवि श्वेतपद्मा!"

विलग होने के दिवस से लेकर आज तक मैं केवल इसी प्रयत्न में हूँ कि किस प्रकार तुम्हें फिर से विलग न रख सकूँ। प्रिये! अपने प्रयत्न में सफल असफल चाहे जो होऊँ किन्तु मिलन के दिन को समीप लाने की

चेष्टा में अवश्य सफल हूँ ।

यह दुर्भाग्य जान कर कि तुम आज मातृ-पितृ-हीना हो चुकी हो, मैं तुम्हारी पुकार पर दूसरी आवाजों को सुनी अनसुनी करके दौड़ता हुआ आ रहा हूँ । विश्वास न खोना-प्रतीक्षा करना ।

तुम्हारा राजकुमार

सन्तोष की श्वास लेती हुई श्वेतपद्मा बोली—"चाहे जब आना, राजकुमार अब तो धीरज बंधाने के लिए तुम्हारा पत्र मेरे पास है । मुझे सुख है कि तुम्हें तुम्हारी प्रतिज्ञा विस्मृति नहीं हुई । तुम राजसी स्वभाव के ऊपर उठ कर अपने प्रण के निभाने की शक्ति रखते हो ।"

उसकी दृष्टि में प्यारे राजकुमार की तस्वीर नाचने लगी । वह साजन के विरह में भी उत्सव-मग्न होकर वन में नाचने लगी प्रियतम सादृश्यता उसे अपने आप में अनुभव हो रही थी ।

उस दिन श्वेतपद्मा ने भरपेट फलाहार किया और नींद भर सोयी ।

जीवन महान् परिवर्तन चक्र में अपने आप बदलता है । श्वेतपद्मा भी इस सत्य से वञ्चित न थी । मातापिता वज्रपात के कारण छुट गये । वह दुर्दैव पर दो आंसू बहा कर फिर कभी नहीं रोयी । अन्ततः वह भी ऋषि-पुत्री थी जो ममता के तागों को बट कर ज्ञान-घृत में जला चुकी है । जीवन में आने वाले दुर्भाग्य को निर्मम आंखों से देखा, राजकुमार की स्मृति में रोयी और उसी की स्मृति में विमुग्ध सी नाच पड़ी ।

कई दिन बीत गये श्वेतपद्मा को किसी भी कल्पना की चिन्ता न हुई किन्तु राजकुमार स्वयं एक सप्ताह पश्चात् पहुँच गया । श्वेतपद्मा उस समय आश्रम के पुष्पावलियों को मधुर स्नेह-जल से सींच रही थी । राजकुमार श्वेतपद्मा के पीछे आ कर खड़ा हो गया और आंख-मिचौनी कर चुप मारे खड़ा रह गया किन्तु श्वेतपद्मा उस मधुर-स्पर्श से परिचित थी। वह राजकुमार के हाथों को बलात् हटाते हुए बोली—"तुम आ गये राजकुमार !"

श्वेतपद्मा शक्तिवान से दृष्टि मिलाते ही आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखते हुए गले से लिपट कर बोली—"यदि तुम न आते तो मैं रूठ जाती

और समझती कि तुम प्रेम का मूल्य नहीं जानते, प्रेम-पुकार पर द्रवित नहीं हो सकते !"

"कैसे न आता प्रिये ?" दृढ़ आलिंगन में भरते हुए राजकुमार बोला। एक दूसरे की दृष्टि दोनों के अन्तर को स्पर्श करती हुई चमक उठी। इस दर्शन में एक अकथ रहस्य था, जिसके अनुभव से जीवन में क्षण भर के लिए तृप्ति जैसी प्राप्त हो चुकी थी।

"राजकुमार !" हाथ पकड़ कर चलते हुए श्वेतपद्मा बोली—"आओ ! उधर सघन कुञ्जों में बैठ कर बातें तो कर लें !

श्वेतपद्मा की उँगली के सहारे चलता हुआ राजकुमार बोला—"तुम्हें वनवासी जीवन कष्टप्रद तो नहीं।"

"नहीं राजकुमार ! किन्तु सूनापन तो महान दुखदायी है। इसके अतिरिक्त प्रकृति के बल पर चाहे जितनी कठिनाई का सामना किया जा सकता है किन्तु............।"

वह राजकुमार की बाहों में बांह डाले हुए इतने परिचित ढंग से बातें करने लगी कि राजकुमार को आश्चर्य जैसा लगा फिर भी राजकुमार की ठोढ़ी उठाती हुई बोली—"प्रिय ! तुम राजपुत्र हो कर वन में क्यों जीवन बिता रहे हो।"

"कुछ नहीं श्वेतपद्मा ! राजसी भोगों की ओर आकर्षण नहीं।"

"किन्तु अकारण गृह-त्याग से माता-पिता के कष्ट का भी अनुमान लगाया है ?"

"माता के अतिरिक्त मेरे लिए विशेष दुखी कोई न होगा, भले ही पिता जी कभी कभी चिन्तित हो लें।"

श्वेतपद्मा आश्चर्य चकित हो कर बोली—"क्या आपके पिता अपने उत्तराधिकारी राजकुमार की ओर से इतने निश्चिन्त हैं ?"

"कुछ अंशों में तो हैं हीं" स्वाभाविक ढंग से राजकुमार बोला।

श्वेतपद्मा चकरायी सी सघन कुञ्जों की शीतल छाया में राजकुमार के साथ बैठती हुई बोली—"राजकुमार ! राजवैभव की ओर से तुम्हारी

उदासीनता देख कर मुझे क्षोभ होता है !"

"क्यों प्रिये ? अन्याय द्वारा सञ्चित भोगोपकरण का त्याग क्या निन्दनीय है ?"

"निन्दनीय नहीं भद्र ! वरन् अभिनन्दनीय है किन्तु भोग सामग्रियों के अस्तित्व की उपयोगिता भी तभी है, जब उनके सुख को आसक्त बुद्धि से भोगा जाय।"

राजकुमार शक्तिवान् चमकती दृष्टि से श्वेतपद्मा को देखने लगा। किन्तु श्वेतपद्मा अपने प्रत्युत्तर द्वारा पड़ने वाले प्रभाव को राजकुमार के मुख पर अङ्कित देखती हुई बोली—"संभवतः राजकुमार यह सोच रहे हैं कि साधु-पुत्रि श्वेतपद्मा उन्हें भोगी-जीवन स्वीकार करने के हेतु उत्साहित कर रही है किन्तु राजकुमार ! प्रकृति स्वयं भोग की प्रेरक है। यह मानवजीवन सृष्टिकर्ता की अनुपम रचना है। इस हेतु मन, इन्द्रियों एवं शरीर द्वारा प्राप्य भोगों को सहज ही जो स्वीकार करता है वह अन्तर में बैठे हुए जीवात्मा का सत्कार करता है। जो हठ-योग द्वारा इस शरीर और इसके वासी को क्षीण नहीं बनाता वही जीवन का साहसी उपभोग कर पाता है।"

श्वेतपद्मा दृष्टि गड़ाये शक्तिवान को देख मुसकराने लगी। शक्तिवान श्वेतपद्मा के विचारों को मुसकराते हुए मन ही मन सोचने लगा।

"प्रिये !" दो अक्षरों में जीवन का सम्पूर्ण अनुराग पिलाते हुए राजकुमार बोला—"तुम दार्शनिक हो। तुमने एकान्तवासी जीवन में संसार की अनुभूतियों को कैसे संगृहीत किया है ?"

अपने आदर के प्रति उपेक्षा प्रकट करती हुई श्वेतपद्मा बोली—"राजकुमार ! मैंने इस वन भूमि में प्रकृति और उसके प्रभाव को खूब देखा। कलियों के पास मधु के प्यासे गुनगुनाते भौंरे देख, चहचहाती हुई चिड़ियों का अपने प्रेमिक के साथ मुक्त-मिलन देखा। बसन्ती मादक वायु के स्पर्श में जीवन में हलचल मचाने वाली मादकता का अनुभव किया और लताओं को वृक्षों से आलिङ्गन कर झूलते देखा ? प्रिय ! तुम भूलते हो ! प्रकृति की इस अद्भुत रचना में जो अनुभव-युक्त विशिष्ट ज्ञान है, वह इस वन-भूमि के अणु अणु में व्याप्त है। सारा संसार इस सूनसान

में स्वच्छन्द विचरण कर रहा है। जहाँ एक ओर बैठ कर शान्ति निवास करती है, वहीं हिंस्र पशुओं की निर्लज्ज क्रूरता में भयानक अशान्ति और अन्याय भी नाचा करता है। निर्बल सबल के सम्मुख पराजित होता है। दूसरी ओर क्रूरता में बेजोड़ रक्त का प्यासा सिंह मानवीय प्रेम के सम्मुख परास्त हुआ; गाय की तरह चुपचाप शान्त रहता है। जो कुछ इन वन-प्रान्तों में होता है, वही सम्पूर्ण विश्व के व्यापार में व्याप्त है। इस हेतु दार्शनिक मैं नहीं वरन् राजकुमार! सृष्टि-विनाश, मोह-प्रेम, आसक्ति-वैराग्य के प्रभाव पूर्ण दृश्य,—स्वयं अनुभूतियाँ अनुप्राणित कर दार्शनिक बना देते हैं।

राजकुमार बोला—"बस, श्वेतपद्मा! मैं समझ गया हूँ। ऋषि पिता ने योग्य बनाने में, एक शिल्पी की भाँति, अन्तर और बाह्य जगत का चित्र, तुम्हारे हृदय में अङ्कित कर दिया है। उसी ज्ञान के सहारे सभी विचार अनुभव-गम्य से हैं।"

पुनः श्वेतपद्मा बातों के क्रम को, बदलती हुई अकृत्रिम हँसी में मुस्करा पड़ी—"राजकुमार! मैं रानी बनूँगी" वह बोली, "एक बार राज-पुरुष की भाँति अपने शयनकक्ष में तुम्हारा स्वागत करूँगी और तब तुम्हें अननुभूत समर्पण के मिलन-संयोग में प्राप्त कर जीवन में कृतकृत्य बनूँगी। याद रखना प्रियतम! श्वेतपद्मा महत्वाकांक्षिणी है इसी हेतु वनवासिनी होकर भी वह राजपुरुष सम्वरण करने चली है। बोलो! अपने पुरुषार्थ से मुझे कृतज्ञ करोगे न!"

राजकुमार निःस्पृह भाव से बोला—"क्या अभी तुम अप्राप्य हो, प्रिये!"

"अवश्य!" नेत्रों में रस भरे हुए वह बोली—"तुम मुझे देख सकते हो, मैं तुम्हारे जीवन-पथ पर बिखरी पड़ी हूँ किन्तु जब तुम मुझे चुनने के लिए हाथ बढ़ाओगे तब हृदय की भावना में मौक्तिक माल की भाँति सुशोभित होने के लिए तुम्हारे हृदय से लिपटूँगी अन्यथा क्षणिक-विनोद के लिए खिलौना बन कर क्रूर-विलास के अशोभनीय नर्तन में जीवन का तोड़ना न स्वीकार करूँगी।"

राजकुमार ने श्वेतपद्मा की इन प्रेम-अभिव्यक्तियों में छिपा हुआ नारीत्व का वह समुज्वल स्वरूप देखा कि एक बार उसे श्वेतपद्मा, सचमुच, अप्राप्य सी ज्ञात हुई। वह बोला—"प्रिये! तुम सरल हो कर भी कितनी दुरूह बातें करती हो कि मैं ठगा सा तुम्हें देखता रह जाता हूँ। क्या तुम्हें प्राप्त करना उतना सहज नहीं, जितना मैं समझ रहा हूँ?"

"मैं क्या जानूँ किसी की समझ! राजकुकार? मैं तो अपनी समझ के अनुसार तुमसे निवेदन करती हूँ केवल इस हेतु कि एक दिन मुझे प्राप्त करने की जो प्रतिज्ञा तुमने ठानी थी उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक है कि मेरा दृष्टिकोण भी समझ लिया जाय!"

श्वेतपद्मा शक्तिवान के पास से उठ कर एक वृक्ष की डाली के सहारे खड़ी हो गयी। शक्तिवान विचारों और अपने चारों ओर की उलझी हुई परिस्थिति पर गंभीर चिन्तन करता हुआ बोला—"तो आज मैं लौट जाऊँ, श्वेतपद्मा, तुम्हें अरक्षित अवस्था में त्याग कर?"

"क्या करोगे तब, राजकुमार! असमर्थता के चरणों में दुस्साहसी व्यक्ति भी झुके हैं। मैं भी समझ लूँगी कि जैसे वन में विकसित होने वाले पुष्प देवता के चरणों तक नहीं पहुँच पाते और अपने वृक्ष में ही सूख जाते हैं, ठीक उसी प्रकार से मेरा जीवन भी वन-भूमि की रहस्यमयी गोद में शून्य हो जायगा। आज जो कामना-बेलि लहलहा रही है, उसे मुरझाना होगा और उठते हुए अरमानों के तूफान में अप्राप्य की शान्ति में शून्य कर देना होगा।"

"और तब?" कुछ अशान्त होते हुए राजकुमार बोला—"आज का वर्तमान, अतीत बन कर स्मृतियों की कड़क लिये बिजली की तरह अन्तरतम में कौंधा करेगा और मेरा जीवन क्षणिक मिलन की दाहक चिता में भस्म हुआ करेगा? मैं सचमुच धधकती चिता जैसी जलन लेकर अभिशाप-ग्रस्त जीवन में आंसुओं की दो बूँदे टपका कर क्षणभर के लिए शीतल हो जाया करूँगा।"

राजकुमार भी अपने स्थान से उठ कर इधर उधर टहलने लगा।

हृदय में उलझी हुई विचार-धारा बड़े बड़े आवर्त बना कर घहराने लगी। राजकुमार का ध्यान अपने दुर्भाग्यपूर्ण जीवन की असफलता पर केन्द्रित हो गया। एक ओर राज-सत्ता लड़खड़ाती हुई प्रजा के चरणों में गिरकर चीत्कार करती दिखलायी पड़ी तो दूसरी ओर पिता की दुष्कृतियां जीवन के सुखों पर कुठाराघात करती हुई दृष्टि में नाचने लगीं। एक ओर समर्पित प्रेम की असफलता पर हृदय दहलने लगा तो दूसरी ओर श्वेतपद्मा की प्रेम स्वीकृति में अस्वीकृति झाँकने लगी और इसी प्रकार अनेक विषमताओं के साथ मधुगन्धा भी प्रेम-देहली पर पांव बढ़ाती हुई जैसे उसकी दृष्टि में समा कर पूछने लगी—"क्या मुझे भी प्रेम-रस की छलकती बूंदों से जीवन की अतृप्ति मिटाने का सुयोग मिलेगा?"

श्वेतपद्मा के समीप आ कर राजकुमार खड़ा हो गया। दोनों मौन बन कर टकराती हुई दृष्टियों से एक दूसरे की आन्तरिक भावनाओं में समा कर जैसे पूछने लगे कि अन्ततः वे दोनों प्रेम-पथ पर चलते हुए किसी स्थल विशेष पर मिलन की आशा जगाये रहें अथवा निराशा के गीत गाते हुए सदा के लिए आँसुओं के सागर में डूब जाँय?

हृदय को तोड़ डालने वाली आहों में चूर हो कर शक्तिवान बोला—"श्वेतपद्मा! सच तो यह है कि मुझे तुम्हारे वियोग की वेदना को पीना ही पड़ेगा। मैं 'मैं' में नहीं हूँ इसी हेतु मेरे जीवन में तुम्हारा विशेष मूल्य है। जितना दुनिया ठुकरा कर तुम्हारी प्रतीक्षा में समय खोता हूँ, वह शक्ति यदि किसी भी मूल्य पर दूसरे कार्यों में लगी होती, या मैं अपनेपन में विधेयात्मा की भाँति स्थित होता, तब भला तुम्हारी प्रतीक्षा में नेत्रों को पथराने से क्या लाभ होता। सृष्टि के व्यापार प्रति दिन नवीनता लेकर ही सम्पादित होते हैं इस हेतु मैं जानता हूँ कि तुम से लगाये गये नेह-बन्धन किस प्रकार तड़तड़ा कर टूटेंगे और बिजली के कड़कड़ाहट की गूँज सुन कर मैं काँप उठा करूँगा।"

नेत्र फिरा कर शक्तिवान पुनः बोला—"न जाने कौन कहता है श्वेतपद्मा! कि तुम मेरे जीवन के लिए पीड़ा ही सिद्ध होगी। तुम राज-राजेश्वरी बनने की लालसा हृदय में पाल कर मुझे सम्वरण करना

चाहती हो किन्तु आज राजराजेश्वरों की सत्ता और वैभव पर सर्वनाश नाच रहा है।"

राजकुमार कुछ और कहते कहते रुक गया श्वेतपद्मा उसके निकट आकर खड़ी हो गयी और शक्तिवान के गले में हाथ डाल कर बोली—"प्रिय ! तुम भूल रहे हो। मेरी महत्वाकांक्षा का यह अर्थ नहीं कि किसी प्रकार शोषण या सताने के द्वारा वैभव और राजलक्ष्मी को एकत्रित करा कर मैं उसकी स्वामिनी बनूँ। मैं भोग की भूखी नहीं। मैं वनवासिनी ऋषि वाला हूँ। मेरी महत्वाकांक्षा मेरी संयमी और अलोलुपी वृत्ति से है किन्तु उस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का जो भार तुम पर लादा गया था वह केवल इस हेतु कि तुम्हारा घोर पुरुषत्व असमर्थ प्रेम के मोर्चे में जकड़ कर निर्बल न बन जाय, राज-शक्ति का संचालन-सूत्र तुम्हारे हाथों में इस हेतु हो कि शक्ति वा अन्याय द्वारा सञ्चित सम्पूर्ण वैभव उन अकिञ्चन भगवान के चरणों में समर्पित हो, जो आज राष्ट्र में दीनता के प्रतीक बने द्वार द्वार डोल रहे हैं। तुम्हारे रत्नजटित किरीट से लेकर राज-लक्ष्मी की अन्तिम वस्तु तक तुम्हारे अधिकार क्षेत्र से दूर हो जांय फिर भी सेवा के द्वारा मानवता को जागृत करने के लिए तुम्हारा हृदय, राजसिंहासन की भाँति, सब के हेतु समर्पित रहें। शक्तिवान की विचारधारा बदल सी गयी। ज्ञात हुआ जैसे अन्तर में श्वेतपद्मा के प्रति कुछ अन्यायपूर्ण विचार घुस आये हैं। वह बोला—"भद्रे ! तुमने कहा था 'मैं रानी बनूँगी' मैं उसका उचित अर्थ न लगा सका, क्षमा करना ! सचमुच ! तुम मेरे जीवन के जागरण के गीत गा रही हो किन्तु तुम्हारी भाषा इतनी भदीली है कि मैं विस्तृत हो जाता हूँ।"

मुसकुराती हुई श्वेतपद्मा बोली—"राजकुमार ! मैं तुम्हारी सारी बातें सहूँगी किन्तु अपने प्रेम पर लाञ्छन की भाँति किसी बात को न सह सकूँगी। जब तुम्हारे जीवन से मेरा सहयोग निश्चित सा है, तब मैं अपना अधिकार समझती हूँ कि वासना या मोह के नाम पर तुम्हारा नैतिक-पतन न होने दूँ। मैं रम्भा और उर्वशी बन कर तुम्हारी वासना तृप्त करूँगी और मैं अन्तर के सम्पूर्ण प्रेम से तुम्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र

में विजयी पुरुष की भाँति देखूँगी मैं तुम्हारे पग २ पर प्रेम बिखेर दूँगी। दासी की भाँति सेवा करूँगी और माता की भाँति तुम्हें भोजन कराऊँगी और माया की तरह तुम्हारे जीवन में ममता बिखेरूँगी किन्तु राजकुमार !...........”

वह कुछ कहती हुई रुक सी गयी। राजकुमार हास्य-बिस्मित मुद्रा में देखता हुआ बोला—“अपनी वाणी मुक्त रहने दो, प्रिये ! इस प्रकार किसी भांति के विचारों का ओट खड़ा कर उसे मत रोको। सन्देह और सङ्कोच को भी दूर भगाओ। फिर यदि चलना ही है तो शीघ्र लौटना भी पड़ेगा !”

“क्या कहा, राजकुमार ! अभी अभी आकर बैठे हो और चलने की भी बात करने लगे।”

“चलना तो पड़ेगा ही !”

“इस पर फिर विचार करेंगे। आज का दिन जाने का नहीं है।”

“तो चलो।” श्वेतपद्मा, राजकुमार का सहारा लेकर चल पड़ी और मन ही मन शक्तिमान इस सुख से हर्षित हो उठा कि जिसका क्षण भर का वियोग असह्य है, वह श्वेतपद्मा प्रत्येक क्षण उसकी दृष्टि के सम्मुख होगी।

श्वेतपद्मा राजकुमार के हास्य-स्मित मुख को देख कर बोल उठी—“किस सुखद कल्पना से तुम्हारा सुन्दर मुख अनुरागरञ्जित हो रहा है, क्या बताओगे राजकुमार ?”

श्वेतपद्मा खड़ी हो कर एकटक राजकुमार को देखने लगी। उसका चञ्चल नारी-हृदय जैसे कह उठा कि प्रियतम-दर्शन का जितना सुख चाहिए, वह इस क्षण उपलब्ध है। दो हृदयों के अतिरिक्त और कोई नहीं। ऐसे मधुर एकान्त में दर्शन-प्यासी-अखियाँ अपनी परिपूर्ण परितृप्ति कर लें।”

शक्तिवान बोला—“प्रिये ! तुम्हारा आकस्मिक मिलन मुझे सुख-विभोर किये हुए है। अपने पार्श्व में तुम्हें देख कर मैं अपने सुखदभाग्य पर इठला रहा हूँ। सचमुच, प्रिये ! जादू की भाँति मेरे जीवन में परिवर्तन

ला देना तुम्हारे क्षणिक संयोग का प्रभाव है। अब तक तुम क्यों दृष्टि-पथ से दूर खड़ी थी !"

"बताऊँ ?" श्वेतपद्मा को हास्य सूझा और उसने रति सी बनकर चञ्चल कटाक्षों से शक्तिवान के हृदय को जर्जर कर दिया और तब बोली- "इस प्रकार तुम्हें घायल कर तड़पाने के लिए ही हम दोनों का अब संयोग हुआ है।"

"बात तो सच है, श्वेतपद्मा !"

निश्चिन्तता से वह बोली। "मेरे सम्पूर्ण आकर्षण का यही अर्थ है, कि तुम मुझे क्षण भर के लिए भी न भुला सको। यही मेरे नारीत्व का गौरव है।"

राजकुमार का हृदय विस्मय-विमुग्ध की भाँति श्वेतपद्मा के चिन्तन में ही डूबा हुआ था। श्वेतपद्मा स्वयं उसका पग पग जोहती हुई उसी के सहारे चल रही थी। किन्तु मिलन के हर्षातिरेक के साथ राजकुमार को एका-एक श्वेतपद्मा का वियोग सा खल उठता था। उसका मन कह उठता 'जैसे इस जागृत-अवस्था के सारे प्रेम-अभिनय स्वप्नव्यङ्ग हैं, जैसे श्वेतपद्मा उसके नितान्त सहवास में नहीं है।" मिलन में वियोग की कल्पना, सचमुच, अटपटी है।

शक्तिवान् को साथ साथ लिये ही उस दिन श्वेतपद्मा ने सारे काम किये। पश्चात् स्नान भोजन एवं शयन की सारी परिचर्या भी श्वेतपद्मा ने स्वयं की। इस प्रकार अपने प्राण-प्रिय प्रियतम की सेवा में उसे अतीव सुख प्राप्त हुआ। जीवन-संगी और प्राणों से भी प्यारे अतिथि के दर्शन-लाभ के साथ कर्तव्य का चरम प्रदर्शन भी करती रही। शक्तिवान् को योगिराज का सात्विक सहवास भूल सा गया। धीरे धीरे एक दो और सात दिवस व्यतीत हो चुके। श्वेतपद्मा और शक्तिवान को एक दूसरे के प्रति नित नवीन प्रेम और नवीन प्रेम के साथ नित नये चाव ने मिलन के सुख को चरमावस्था तक पहुँचा दिया। किन्तु अतीव एकान्त में भी वे पतित वासना के मोह-जाल से विलग ही रहे।

आठवें दिन शौच स्नानादि से निवृत्त होते ही शक्तिवान् बोला—"लो, प्रिये ! आज तुम अपनी प्राणों से भी प्यारी शिशु-क्रीड़ा-भूमि वनस्थली को नमस्कार करो और इन प्रत्येक लता-पुष्पों एवं वल्लरियों को भी प्रेम से देख लो। इसके अतिरिक्त और जो वनवासी तुम्हारे प्रिय एवं हितेच्छु हों, उनसे विदा लो। आज हम दोनों यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

श्वेतपद्मा को ज्ञात भी था, इस हेतु अपने हितकारी वन-सेवकों को बुला कर आश्रम का भार सौंपती हुई श्वेतपद्मा बोली—"देखो, मेरे बाल्य-काल से लेकर आज तक का जीवन इस वन-भूमि के अलौकिक मोह-बन्धन में मुझे जकड़ चुका है और इस भूमि के कण कण में मेरे जीवन की ममता बिखरी है, यह मेरा पितृ-गृह है। इस हेतु वनवासियों ! यहाँ के मधुर फल फूल एवं जल से अपना परिपालन करते हुए इन लता-वृक्षादिकों की सेवा करना और मुझे न भूलना। मैं यथासंभव शीघ्र ही पुनः आऊँगी। लो, मैं जाती हूँ।"

श्वेतपद्मा के स्नेहार्द्र नेत्र बरस पड़े। वह अपने शैशव-जीवन की क्रीड़ा-भूमि से विलग होते समय बड़े बड़े आंसुओं में रो पड़ी। सारे वन-वासी श्वेतपद्मा के चरणों में श्रद्धायुत प्रणाम करते हुए ठगे से खड़े रह गये। श्वेतपद्मा अन्तिम बार सबको नमस्कार कर चल पड़ी। न जाने कितनी अतीत स्मृतियों के सुनहले रुपहले दृश्य दृष्टि-पथ पर नाचने लगे। राजकुमार भी श्वेतपद्मा की करुण अवस्था से सदय हो उठा। श्वेतपद्मा के साथ उसका प्राण-प्रिय सेवक भी परिचर्या के लिए चल पड़ा। साधु श्रीवत्स की कुटिया सूनी हो गयी। उसकी तपस्या का समुज्वल फल श्वेत-पद्मा मानो शक्तिवान् को बड़भागी बनाने के उद्देश्य से चल पड़ी। सारा आश्रम मृत्यु की सी शान्ति में मानो विकट चीत्कार करने लगा। पीड़ामय विरह की अशान्ति में वह वनभूमि बिलख पड़ी। वनस्थली की प्यार प्रतिमा मानो उसे उजाड़ कर राजकुमार के सुखमय गृह का निर्माण करने चली हो।

मार्ग में शक्तिवान् बोला—"भद्रे ! मेरे हेतु तुम आज अपनी प्रिय क्रीड़ा-भूमि त्याग कर बहुत दुखी हो। मैं लज्जित हूँ !"

श्वेतपद्मा भरे हुए मन से बोली—"राजकुमार ! आज मैं अपना नवीन

जीवन निर्माण करने चली हूँ। मेरी इच्छा को प्रमुख स्थान देते हुए मेरे ऋषिपिता ने तुम्हारे हाथों मेरा हाथ पकड़ा दिया था। आज उस सहारे को दृढ़ और पूर्ण अधिकार में लाने के लिए मेरे समर्पण की लीला प्रारम्भ हो रही है। परमात्मा करे, हम तुम उस पुनीत आत्मा की एकमात्र इच्छा को सफल करने में आजीवन एक दूसरे के प्रति सर्वस्व उत्सर्ग किये रहें।"

राजकुमार बोला—"ऐसा ही होगा, देवि! हम दोनों अपने को यथाशीघ्र वैवाहिक बन्धन में जकड़ कर, लौकिक मर्यादा की रक्षा करते हुए, प्रेम और उत्सर्ग-पथ पर बढ़ते चलेंगे।"

चलते चलते श्वेतपद्मा मुस्करा उठी और बोली—"एक बात तो प्रथम दिन से लेकर आज तक मैं भूलती ही जा रही हूँ।"

"वह क्या!" उत्सुकता से राजकुमार बोला।

"कह दूँ?" श्वेतपद्मा उसी भाँति हँसते हुए बोली।

"हाँ, हाँ।"

वह बोली—"अच्छा, सुनो राजकुमार! तुम्हारी अन्य प्रेमिकाएँ भी कोई हैं?"

"कोई नहीं।"

"सच सच कहना?"

"सच नहीं, तो क्या झूठ बोलता हूँ।"

"मैं नहीं जानती" श्वेतपद्मा बोली—"किन्तु यदि तुम्हारी प्रेमिकाएँ हों तो मुझे उनसे अवश्य अवगत करा देना।"

कुछ सोचता हुआ शक्तिवान् बोला—"क्यों? यह तो कोई रहस्य नहीं।"

"मेरे लिए रहस्य है, राजकुमार! मैं तुम्हें सम्पूर्ण हृदय से प्यार करने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ और विवाह के पश्चात् यह प्रतिज्ञा अन्तिम रूप से अटल हो जायगी। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि तुम्हें प्रेम करनेवाली प्रेयसी मेरे अतिरिक्त भी है क्या, जो उसी प्रेम-प्याले से अपनी तुष्टि चाहेगी जिसके द्वारा मैं अपना जीवन सफल करने जा रही हूँ?"

"पत्नी रूप में तुम अकेले मेरे प्रेम की प्राप्ति करोगी, देवि! किन्तु

राजपुरुष होने के कारण मेरा सम्बन्ध अनेक प्रकार की स्त्रियों से हो सकता है !"

राजकुमार श्वेतपद्मा का मुख देखने लगा किन्तु वह उसी प्रकार उत्सव-मग्न अवस्था में बोली—"सम्बन्ध तो केवल मुझसे ही रह सकेगा, भले ही अन्य स्त्रियां योग्य सहायता के द्वारा तुम्हारी कृपापात्री बनी रहें किन्तु प्रेम-पात्री तो नहीं हो सकेंगी।"

राजकुमार बोला—"प्रेम का निर्मल स्रोत सबके निमग्न होने के लिए ही है।"

"किन्तु" वह बोली—"जो स्रोत पती-पत्नी के परस्पर अधिकार परिधि में हैं, उनमें निमग्न होने का दम्पति-मात्र को ही अधिकार होगा।"

व्यङ्ग की तरह मुस्कराता हुआ शक्तिवान् बोला—"सन्देह की सृष्टि प्रेम-पथ की असफलता है। इसे ध्यान में रखना, श्वेतपद्मा !"

वह कुछ नहीं बोली—चुपचाप चलने लगी। मार्ग में बाल्य-काल की सुखद स्मृतियों का वर्णन करते हुए शक्तिवान् बीच बीच में श्वेतपद्मा को प्रसन्न कर देता था। कहीं कहीं श्वेतपद्मा का वनवासी सेवक भी अपने जङ्गली जीवन की अनेक सुखद कहानियां सुनाता हुआ राजकुमार एवं श्वेतपद्मा का मन बहलाव करता जाता था।

एक सप्ताह पश्चात् राजकुमार अपने आश्रम में पहुँच गया। योगिराज श्वेतपद्मा को शक्तिवान के साथ देख कर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह आश्रम एक प्रकार से सुन्दर सहयोग की मधुरिमा में शोभित होकर नाचने लगा।

श्वेतपद्मा के निवास स्थल को बनाने का भार उसी के सेवक ने ले लिया और धीरे धीरे वह आश्रम कई सुन्दर कुटियों से सुसज्जित होकर वन भूमि में इठलाने लगा।

× × × ×

आज योगिराज का आश्रम उत्सव मग्न था। आज राजकुमार श्वेत-पद्मा को अन्तिम रूप से पत्नी की भाँति ग्रहण करने जा रहा था। योगि-

राज स्वयं पुरोहित का कार्य सम्पादन करके शास्त्रोक्त एवं वैदिक-प्रणाली द्वारा दोनों को प्रेम एवं प्रतिज्ञा के बन्धन में जकड़ लेना चाहता था। योगिराज का शक्तिवान् से श्वेतपद्मा के आने पर जो सम्भाषण हुआ था। उसी को मूर्त रूप देने के हेतु इतना शीघ्र विवाह का आयोजन किया गया था। उसका अपने मित्र शक्तिवान् से कहना था कि परस्पर दो प्रेमियों को, नैतिक पतन से पूर्व ही, प्रणय सम्बन्ध की स्थिरता के हेतु विवाह कर लेना चाहिए, इस प्रकार वे आदर्श और समाज दोनो के रक्षक बनते हैं क्यों कि नैतिक-पतन की कहानी समाज को स्वयं दुर्बल और आदर्श-हीन बना देती है।

श्वेतपद्मा योगिराज के विचारों का दृढ़ता पूर्वक समर्थन करती हुई करती थी कि "एक स्त्री के लिए अविवाहित प्रेमी अपवाद का कारण होता है। ऐसे दृश्य समाज की दृष्टि में हीन समझे जाते हैं।"

शक्तिवान स्वयं अपने और श्वेतपद्मा के बीच अन्तर देखता हुआ चाहता था कि वनवासी जीवन में ही वह अपनी जीवन-सङ्गिनी प्राप्त कर ले। आज उसका हृदय फूला न समाता था। उसे आज राज महलों एवं राज-वैभव का भी ध्यान नहीं था। वह वन-भूमि ही राज महलों से अधिक सम्पन्न एवं श्रीयुक्त ज्ञात होती थी जहाँ उसे श्वेतपद्मा जैसी अमूल्य जीवन-निधि प्राप्त हो रही थी। सारा आश्रम हरित तोरण एवं वन्दन वारों से सजाया गया था। बीच आश्रम में विवाह-वेदी स्थापित की गयी थी। सामने हवन-कुण्ड प्रज्वलित था, जिसमें काष्ठौषधियाँ सुलग रही थीं और उनके सुगन्धित द्रव्य से समस्त आश्रम महक रहा था। राजकुमार अपनी कल्पनाओं में अलग मग्न था। श्वेतपद्मा अपनी वन-वासिनी सहेलियों के साथ पुष्पहारों एवं पुष्पालङ्कारों से सज रही थी। आस पास के वन-वासी भी विवाहोत्सव में गायन-नृत्य द्वारा उत्सव मना रहे थे। एक प्रकार से वर-वधू अपने शृङ्गार के पश्चात् ही विवाह-मण्डप के नीचे आने वाले थे।

योगिराज शक्तिवान् के समीप मुस्कराते हुए बोला—"देखो, मित्र! आज माता पिता एवं सुजन-सुहृद के पद पर मैं आसीन हुआ, तुम्हें प्रणय-

बन्धन में बांधने जा रहा हूँ। तुम्हारा अपना कोई नहीं है और विशेषता यह कि तुम सत्ताधारी हो। आज नहीं तो कल प्रजा के प्रतिनिधि बन कर प्रेम नगर में चमकोगे उस समय श्वेतपद्मा तुम्हारे राजसिंहासन पर बैठी हुई साम्राज्ञी बनेगी। बोलो, कैसा अपूर्व सम्मेलन होगा ?"

विहंसते हुए शक्तिवान बोला—"मित्र ! सचमुच, इस वन-देवी के संयोग से मेरा जीवन खिल उठेगा। भाग्य की गति विचित्र है। वह न जाने, क्यों मुझे इस वन की प्रेरणा देकर लाया था; किन्तु भाग्य की देन के रूप में श्वेतपद्मा की अलभ्य-प्राप्ति प्राणों से भी अधिक मूल्यवान है।"

प्रसन्नता के आंसू शक्तिवान के नेत्रों में भर आये। वह विस्मय विमुग्ध सा योगिराज को देखता हुआ बोला—"सुहृद ! श्वेतपद्मा की भाँति ही तुम्हारा प्रेमपूर्वक सहवास कम सुखदायी और वरदायी नहीं है। श्वेतपद्मा को प्राप्त करने में तुम्हारा आशीर्वाद भी बहुत सहायक हुआ है।"

दोनों मुस्करा पड़े। योगिराज बोला—"राजकुमार ! मैं देखने आया था कि क्या वर-वधू श्रृंगार कर के पूर्ण सुसज्जित हो गये ? लो, जाता हूँ और तुम्हें भी कुछ ही क्षणों पश्चात् मण्डप में आना होगा।"

योगिराज एक बार जाकर सम्पूर्ण विवाह-सामग्री एवं मण्डप को देखता हुआ बोला, "कार्यारम्भ होना चाहिए।"

योगिराज के अतिरिक्त कुछ और विद्वान आ चुके थे जो कर्मकाण्ड के ज्ञाता थे। सब के आदेश पर वर-वधू मण्डप में बुलाये गये और देव-पितृपूजन के पश्चात् विवाह प्रारम्भ हुआ।

प्रतिज्ञाओं की बारी आयी। साक्षी स्वरूप अग्नि सूर्य चन्द्र आदि की प्रतिज्ञा ले कर दोनों ने एक दूसरे को मन, वचन, कर्म से स्वीकार किया। वेद-मंत्रों के उच्चारण से सारा आश्रम गूंजने लगा। आशीर्वचन एवं मङ्गल पाठ की पवित्र ध्वनियाँ सब के कर्ण कुहरों में गूंज उठी। सम्पूर्ण विवाह सविधि समाप्त हुआ। वर-वधू गुरु एवं प्रिय जनों से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए सब के समीप पहुँचे। अन्तिम बार जब वे योगिराज से आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते थे, अचानक पहियों की घरघराहट से वन भूमि गूंज उठी। आश्रम के सम्मुख एक रथ आकर खड़ा हुआ। एक हाथ

से उलझे लटों के केश पकड़े हुए महान सुन्दरी मधुगन्धा उतरी और आतुरता छिपाये पग बढ़ाती हुई आश्रम की ओर पहुँची। समस्त लोगों का को ध्यान उसकी ओर खिंच गया। योगिराज भी उसे ही देखने लगा। शक्तिवान और श्वेतपद्मा की भी दृष्टि उस पर पड़ी। मधुगन्धा ने भी वर-वधू को योगिराज से अन्तिम आशीर्वाद प्राप्त करते देखा। वह योगिराज को प्रणाम करती हुई वर-वधू के सम्मुख खड़ी हो गयी और तृषित दृष्टि से सम्पूर्ण मण्डप एवं वर-वधू को ठगी सी देखती रह गयी। श्वेतपद्मा ने भी उसे देखा और देखती ही रह गयी। मधुगन्धा के मुख की मुसकान उड़ गयी। गहरी निराशा तीव्र पीड़ा एवं असह्य पश्चात्ताप हृदय में गरज उठा। किसी प्रेरणा ने हृदय में घाव करते हुए पूछा, "यह विवाह कैसा, मधुगन्धा इस उत्सव में तूने क्या पाया?"

वह सर्प-दंशन जैसी पीड़ा से अन्तर में छटपटा उठी। अन्तिम बार वर-वधू को देखते हुए जब उसकी दृष्टि शक्तिवान से टकरायी तो वह भी अनजान ही में सहम गया। वर-वधू मण्डप छोड़ कर आश्रम की ओर पधारे। योगिराज लौट कर मधुगन्धा से कुशल-प्रश्न पूछने लगा। मधुगन्धा वहाँ से लौट कर शशि एवं नीलकण्ठ के साथ अपने लिए एकान्त वास-स्थल का प्रबन्ध करने लगी।

सारा प्रबन्ध बात की बात में समाप्त हो गया। हत्या के विचारों में उलझी हुई मधुगन्धा राजकुमार का विवाह देख कर एक बार जल उठी किन्तु अपनी आग को अपने ही में छिपाये भस्म भी होने लगी। राजा मलय सेन एवं सेनापति के हत्या के घण्टे भर पश्चात् से मधुगन्धा बावली सी दृष्टि फाड़ फाड़ कर चारों ओर देखती रही है। घोर अशान्ति में भी हृदय को कड़ा कर वह सोचती कि राजकुमार के समीप पहुँच कर पाप की पीड़ा कुछ कम हो जायगी किन्तु जैसे ही वह स्नानादि के पश्चात् अपने एकान्त शयन-कुटी में पहुँची वैसे ही उसकी आत्मा गरज कर कह उठी—"पापिनी! हत्या द्वारा शक्तिवान का प्रेम प्राप्त करने चली थी। ले, तेरे लिए दहकते पाप कुण्ड की अग्नि, भस्म करने को पर्याप्त है। शक्तिवान के प्रेम-रस का प्याला पीना जिसके भाग्य में बदा था, उसने आज शक्तिवान

को अपने बन्धन में जकड़ डाला। चल, मधुगन्धा! तू अपने पापों के लिए रुदन कर, अनवरत रुदन में जीवन को डुबा दे।"

राजा मलय सेन एवं सेनापति के मृत्यु की भयानक झाँकी मधुगन्धा के नेत्रों में प्रत्येक क्षण झूलती रहती थी और उसकी अन्तरात्मा का घोर आर्तनाद उसे तड़पाता और जलाता रहता था।

मधुगन्धा सोचती—"अभी राजकुमार को पिता की मृत्यु का पता नहीं, सारा आश्रम आनन्दोत्सव में मग्न हो रहा है। राजकुमार नव विवाहिता वधू के उन्मुक्त प्रेम-चुम्बनों का रस पी पी कर अघाते न होंगे किन्तु जैसे ही उन्हें ज्ञात होगा वैसे ही क्या वे मुझे हत्यारिणी समझ कर घृणा न करेंगे? अन्त में मलय सेन उन्हीं के पिता हैं न! अपना पन किसे प्यारा नहीं होता? क्या पता, राजा मलयसेन की अन्त्येष्टि-क्रिया के लिए राजकुमार को जाना भी पड़े!"

उधर शक्तिवान मधुगन्धा से मिलने के हेतु व्यग्र हो रहा था। वह वैवाहिक क्रियाओं को सम्पूर्ण करने के पश्चात् से ही मधुगन्धा के समीप जाने की बात सोच रहा था किन्तु श्वेतपद्मा भी अनेक बातों में उलझाये हुए थी। विवाह मण्डप से लौटने के पश्चात् अपने हाथों पति को प्रेमपूर्वक भोजन करा कर श्वेतपद्मा उसी के साथ बातें कर रही थी। कभी वह पूछती—"आने वाली सुन्दरी कौन है? कहाँ रहती है? इस आश्रम पर वह कैसे आयी? उस सुन्दरी की दृष्टि से ज्ञात होता था कि उसका और तुम्हारा पूर्व परिचय है। वह खोयी सी—न जाने कैसी व्याकुल दृष्टि से तुम्हें देख रही थी। क्या है जो मुझे रहस्य सा ज्ञात होता है।"

शक्तिवान ने मधुगन्धा का सारा परिचय देते हुए कहा—"वह भी इसी आश्रम में रहती है। उसने अपना सारा विलास वैभव त्याग रक्खा है। वह राजनैतिक सफलता प्राप्त कराने में मेरी बड़ी सहायक है इसी हेतु मेरा उसका परिचय है।"

श्वेतपद्मा बोली—"तुम्हें जाना चाहिए, प्रिय! वह आज हमारी अतिथि है। अपना विवाह संस्कार करके जिस उचित कर्तव्य का पालन

हम दोनों ने किया है, वह जीवन की महान घटना है। ऐसे अवसर पर किसी का सत्कार करना न भूलना चाहिए।"

शक्तिवान ने देखा कि श्वेतपद्मा किस अनुराग के साथ उसे मधुगन्धा के समीप जाने की सलाह देती है। इस तरह वह कर्तव्य-पालन को श्रेष्ठ समझती है।

शक्तिवान उठ कर मधुगन्धा की कुटी में पहुँचा। शशि ने स्वामिनी से राजकुमार शक्तिवान के आने की बात कह कर उसे सजग कर दिया। मधुगन्धा उसी रुदन-विह्वल वेश भूषा में राजकुमार का स्वागत करने दौड़ी राजकुमार प्रथम दृष्टि में ही मधुगन्धा की अस्तव्यस्तता देख कर अनुमान कर गया कि जिस प्रसङ्ग के लिए उसे प्रेमनगर भेजा गया था, वह अवश्य सफल हुआ है। इसी कारण मधुगन्धा पश्चात्ताप-मग्न स्थिति में है।

मधुगन्धा के सम्मुख आते ही आदरपूर्वक राजकुमार ने अभिवादन किया। मधुगन्धा इस विपरीत आचरण से विहँस पड़ी। मुसकुराते हुए राजकुमार बोला—"भद्रे! आपकी सफलता के लिए बधाई देता हूँ।"

"किस सफलता के लिए?" उसी प्रकार विहँसते हुए मधुगन्धा बोली—"राजकुमार! इतना आदर मिश्रित सम्बोधन मुझे कभी न मिला था, क्या यह आज के शुभ-विवाह का उपहार है?"

राजकुमार नत दृष्टि से बोला—"मधुगन्धा! यह तो कोई उपहार नहीं! समय समय की व्यावहारिकता सुखद होती है।"

"किन्तु" बीच ही में बात काट कर मधुगन्धा बोली—"आज के दिन मुझे अवश्य उपहार मिलना चाहिए।"

राजकुमार उदारतापूर्वक बोला—"मांग सकती हो, मधुगन्धा! आज मैं सफल प्रयत्न एवं अपनी स्थितियों पर विजयी हूँ।"

मधुगन्धा ने देखा कि श्वेतपद्मा के सम्वरण करने के पश्चात् ही राजकुमार इतना उत्सव-मग्न है जैसे वह पुष्पधन्वा कामदेव हो। आज उसकी-रूप माधुरी एकटक देखते ही बनती है। आज श्वेतपद्मा के समस्त प्रेमानुराग का अधिकार पाकर उसकी रूप-श्री एवं मुख छवि द्विगुणित हो गयी है।

दूसरे ही क्षण मधुगन्धा के हृदय में हत्या के पाप ने डङ्क मार दिया। वह बावली सी राजकुमार का हाथ पकड़े अपने एकान्त शयन कुटी की ओर बढ़ी। राजकुमार के आसीन होने के साथ ही उसका चरण पकड़ कर मधुगन्धा भूमि में लोटने लगी—वह बोली—"राजकुमार! मैंने गुरुतर अपराध कर डाला। आपके पिता मलयसेन व सेनापति दोनों इस संसार से विदा ले चुके हैं। मैं आपके पिता की हत्यारिणी हूं। मुझे क्षमादान दीजिए।"

पश्चात्ताप का प्रगाढ़ भाव मधुगन्धा के हृदय में अङ्कुरित होते देख राजकुमार सदय हो उठा वह स्वभावतः मधुगन्धा को क्षमा करने के साथ ही शान्ति पहुंचाने के लिए अपने हाथों मधुगन्धा को उठा लिया और सान्त्वना एवं सहानुभूति पहुँचाने के हेतु अपने हृदय से लगाते हुए बोला—"मधुगन्धा! मैंने तुम्हें क्षमा किया। मुझे पिता की मृत्यु का तनिक भी पश्चात्ताप नहीं और मेरा दृढ़-विश्वास है कि प्रेम-नगर की प्रजा उनके मृत्यु पर हर्ष मनायेगी। उनके भीषण अपराधों का यही दण्ड था। तुम अपना हृदय छोटा न करो। मुझे तुम्हारे पश्चात्ताप से पूरी सहानुभूति है। यदि राजा मलयसेन की मृत्यु का कोई पाप हो तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा, कि वह मेरे सिर चढ़े।"

मधुगन्धा राजकुमार के हृदय से चिपकी अननुभूत सुख में मग्न हो चुकी थी। सचमुच, पाप-पीड़ा का दाह राजकुमार के हृदय स्पर्श से शान्त हो चुका था। मधुगन्धा के लिए यह अलभ्य लाभ था। राजकुमार विस्मित सा मधुगन्धा को हृदय से लगाये हुए पुनः बोला—"मधुगन्धा! तुम शीघ्र ही देखोगी कि प्रेम-नगर की जनता, शासन प्रणाली, एवं राजनैतिक अधिकारों में ऐसे महान परिवर्तन होंगे कि थोड़े ही दिनोंमें प्रजा सुख-समृद्धि से परिपूर्ण होकर, दुखों एवं यातनाओं से मुक्ति दिलाने के लिए तुम्हें आशीर्वाद देगी।"

सहसा राजकुमार किसी भावना से सिहर उठा किन्तु भावों को छिपाते हुए मधुगन्धा को छोड़ अपने आसन पर जा बैठा। मधुगन्धा उसी के सम्मुख बैठ गयी। वह बोली—"प्रजा कुछ कहे किन्तु मेरी अन्तरात्मा

मुझे हत्यारिनी कह कर ही पुकार रही है। प्यारे राजकुमार! मैं पाप के बोझ से दबी जा रही हूँ। यह समस्त वन, भूमि एवं अन्तरिक्ष घूमे जा रहे हैं। उफ, यह मैंने क्या कर डाला ?"

सान्त्वना देते हुए राजकुमार बोला—"मधुगन्धा ! जो कुछ कर डाला, उसके लिए आंसू बहाना व्यर्थ है। एक उज्वल भविष्य की कल्पना करो और उसी प्रयत्न में जीवन को बिता दो। जाओ अपने नगर जाओ और शान्त होकर कुछ समय व्यतीत करो। मैं तुम्हें पुनः बुलाऊँगा और पुरस्कृत करूँगा।"

मधुगन्धा राजकुमार के इस निर्णय से कांप उठी। वह डरती हुई बोली—"राजकुमार ! मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती। केवल तुम्हारा दर्शन चाहती हूँ अतएव अभी कुछ दिनों तक अपने सन्निकट रहने दो।"

"किन्तु, संभव है, मुझे प्रेम नगर जाना पड़े।"

"आप प्रसन्नता से जाइए। मैं केवल इसी कुटी में रहने की आज्ञा चाहती हूँ। मैं यहीं रहूँगी।"

मधुगन्धा शून्य सी पुनः मौन हो गयी। शक्तिवान दूसरे ही क्षण उठा और जाने लगा। मधुगन्धा राजकुमार को जाते देख कुछ कह न सकी। वह पथरायी दृष्टि से राजकुमार को देखती ही रह गयी और शक्तिवान् पलभर में उसकी पलकों में पुनः नाचने लगा। वह महान रोगिणी की भाँति शय्या पर जाकर लेट गयी।

राजकुमार मधुगन्धा के पास से लौट कर पुनः श्वेतपद्मा के पास आकर बोला—"श्वेतपद्मा ! मेरे पिता की भी मृत्यु हो चुकी। संभवतः अब हम लोगों को शीघ्र ही नगर लौट जाना पड़े।"

श्वेतपद्मा के नेत्रों में आंसू आ गये। वह बोली—"तुम जाओ तब प्रिय, पिता का दाह संस्कार करना भी आवश्यक है।"

"वह सब हो जायगा, क्योंकि राज-पद का उत्तराधिकारी इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं।"

श्वेतपद्मा ने इसे अपना दुर्भाग्य समझा किन्तु राजकुमार को ऐसा

ज्ञात हुआ जैसे उसके कर्म-पथ के काँटे निकल गये हों और अब उसे केवल चलना बाकी हो।

मधुगन्धा जो राजकुमार की उपस्थिति से क्षण भर के लिए मुस्करा पड़ी थी, सूने एकान्त में बैठकर अपने अन्तर से पूछने लगी, "ऐ हृदय! तू किसके लिए तड़प रहा है? क्यों बीमार है, क्यों हाहाकार करती हुई पश्चात्ताप की पीड़ा में सब कुछ स्वाहा किये जा रही है? क्या तूने प्रेम की उपासना में हत्या का क्रूर-कर्म नहीं किया? क्या तूने अपने रूप-मद में पड़कर न जाने, कितने पुरुषों को नैतिक-स्तर से स्खलित नहीं किया?"

"यदि ये सारे पाप तुम्हारे ही हैं तो आँसू, रुदन, मुर्च्छा, जलन और उत्पीड़न को स्वीकार कर। मनुष्य के प्रारब्ध-भोग के आगे-आगे कर्म-फल दौड़ते हैं।"

मधुगन्धा पीड़ा से छटपटा उठी—"ओफ़ सुन्दरी-नर्तकी बनकर मैंने दूसरों के जीवन में पीड़ा भर दी। कुत्सित हास्य एवं कटाक्ष के झूठे प्रेम-प्रदर्शन द्वारा कितने ही हृदयों को मैंने फूल की तरह तोड़ कर मसल डाला। मैंने क्या नहीं किया? छल, कपट, लोलुपता को हृदय-द्वार पर खड़ा कर वासना के उद्दाम-वेगों द्वारा अन्तर्मथन करके मैंने पाप ही तो कमाया। हाड़-मांस की इस दुर्गन्धि पूर्ण ठठरी पर मुझे इतना बड़ा अहङ्कार कैसे हुआ? ओह! तुच्छ संसार! इन नारकीय सुखों का कितना पतन है!! इन प्रमथन शील इन्द्रियों में भोग की कैसी भयावह होली जल रही है? मोहित-जीव! कैसे तू पल-भर इन सुखों के भोगने की तृष्णा में यज्ञ-मय जीवन को वासना की बलि-बेदी में हवन कर सका? पानी के बुदबुद (बुलबुले) जैसा पल भर का मानव जीवन! तुच्छ! अशुभ!! घृण्य!!!"

प्रगाढ़ पश्चात्ताप में जीवन का अतीत-सत्य मधुगन्धा में वैराग्य भर रहा था किन्तु आग के चिनगारी सी जल उठने वाली मोह मयी वासनाएँ उसे अपनी ओर आकर्षित कर कहती थीं—"पल भर ठहर, इस सुख को भोग! राजकुमार तुझे पुरस्कृत करने को उत्सुक हैं। जो चाहे, राजकुमार से ले ले! वह इच्छित पुरस्कार देने को कटिबद्ध है! उसके शीतल हृदय-स्पर्श द्वारा जीवन में कैसे सौख्य और शान्ति भर जाता है।"

सहसा मधुगन्धा के सामने पल भर पूर्व देखा हुआ श्वेतपद्मा के सुहागपूर्ण स्वरूप का चित्र स्मृति-पट पर उभर उठता था। वह प्रश्नवाचक बनकर मधुगन्धा के दृष्टि-पथ पर खड़ा हो जाता। श्वेतपद्मा जैसे कह उठती—"मेरे स्नेहव्रत का पवित्र अञ्चल प्रियतम के शीश पर अपवित्र वासनाओं को मड़राने से रोकता है। तुम हम दोनों के जीवन पथ से दूर हटो, मायाविनी मधुगन्धा! यदि तुमने युगल-प्रेमियों के जीवन में विष घोलने का प्रयत्न किया तो सच मानना, तुम्हें अपने श्रापों से भस्म कर दूंगी। मेरा प्रेम राजकुमार की रक्षा के लिए अभेद्य कवच है। मैं अपना प्रियतम, पतित और भ्रष्ट न होने दूंगी। हमारे प्रेम की क्रीड़ा भूमि को अपने अपवित्र स्पर्श से दूषित करने का प्रयत्न न करो, मधुगन्धा !!!"

श्वेतपद्मा की इस चेतावनी से मधुगन्धा कांप उठती थी। यदि वह श्वेतपद्मा के लिए राजकुमार को मुक्त होजाने दे तो उसके जीवन का सहारा कहाँ बचेगा। तब ?………क्या श्वेतपद्मा से प्रतिद्वन्द्विता निभानी पड़ेगी ?

मधुगन्धा इस कल्पना से जैसे बेसहारे भावनाओं के अगाध-समुद्र में डूबने लगती थी। जीवन धारण किये रहने का कोई उद्देश्य ही उसके समक्ष न रह जाता था। एक प्रकार से मधुगन्धा पश्चात्ताप और प्रियतम-मिलन के द्वन्द्व में पिस रही थी। एक ओर जीवन से प्रगाढ़ घृणा तो दूसरी ओर वासनाभिषिक्त जीवन के प्रति उत्कट मोह !!

दिन व्यतीत होता हुआ समाप्त हो गया। सन्ध्या आयी। सम्पूर्ण वन-भूमि रजत रात्रि की उज्वल चाँदनी से चमक उठी। शीतल मन्द एवं सुगन्धि पूर्ण वायु के झोंकों ने दिन भर उत्तप्त वायु को शान्त कर जीवधारियों में नव-जीवन अनुप्राणित कर दिया। श्वेतपद्मा प्रियतम-मिलन की प्रथम प्रणय-रात्रि में वन-पुष्पों के सुरभित हारों से सज कर पिता के निर्मल तपस्या की भाँति मन मोहिनी बन बैठी। इठलाता हुआ शक्तिवान् देवता की भाँति उस अनुराग-रञ्जित-यामिनी में श्वेतपद्मा की प्रेम-पूजा को स्वीकार करने आ पहुँचा। एकान्तमें प्रीतम के मधुर-मिलन की उत्कण्ठा में बैठी हुई श्वेतपद्मा मुस्करा उठी। शक्तिवान उस मोहक-चितवन की

मदिर प्यास में विह्वल हो उठा। वह श्वेतपद्मा को प्रगाढ़ आलिङ्गन में भर कर बोली—"प्रिय ! आज की रात कितनी मूल्यवान है ?"

स्मित-हास्य में फड़कते हुए मधु-प्यासे अधरों द्वारा शक्तिवान का चुम्बन करती हुई श्वेतपद्मा बोली—"क्यों ! आपने कौन सी अमूल्य निधि पा ली ?"

"बताऊँ ?" राजकुमार ने भी श्वेतपद्मा के कपोलों पर प्रेमचित्र चिह्न अङ्कित करते हुए कहा।

"अवश्य !"

प्यार करते हुए राजकुमार बोला—"प्रिये ! नारी स्वयं अमूल्य रत्न है। तुम अपना मूल्याङ्कन भला क्या कर सकोगी ? इसके लिए तो मेरी दृष्टि ही उपयुक्त है। तुम्हें प्राप्त कर मुझे और कुछ भी मूल्यवान नहीं ज्ञात होता।"

कुछ गम्भीर होकर श्वेतपद्मा कहने लगी—"आर्य ! अवश्य ही पुरातन प्रेम हम दोनों के जीवन को कृतकृत्य करने आया है, अन्यथा, अपने पिता की एकान्त कुटी में तुम्हें प्राप्त कर सकना कितना असंभव था ? तुम्हारे मधुर-दर्शन ने मेरे जीवन में प्रेम, स्फुरित कर मुझे प्रेम का मीठा घूंट पिलाया। आज हम दोनों मुक्त-हृदय से शारीरिक एवं आत्मिक मिलन द्वारा वियोग की पीड़ा को निवारण करने में समर्थ हुए हैं। प्रियतम ! हमारी आकांक्षाओं की दीप-शिखा युगों तक प्रज्वलित रहे और यह जीवन अवि-रल-स्नेह-स्रोत की अमृतमयी धारा में सम्पूर्ण निमग्न रहे !"

श्वेतपद्मा राजकुमार के गले में अपनी बाहें डाले हुए खिली हुई चाँदनी की समुज्वल किरणों के मादक स्पर्श से विमुग्ध हो रही थी। शक्तिवान् नारी के इस मूक-समर्पण पर अपने को धन्य समझता हुआ विचारों की नयी सृष्टि कर रहा था। सहसा राजकुमार पुनः बोला—"प्रिये ! तुमने माना कि आज की रात मूल्यवान् है ?"

"माना, मेरे प्राण ! "आज अनिर्वचनीय स्पर्श-सुख में विभोर होती हुई श्वेतपद्मा बोली—"आज की रात न जाने कितनी उन्मादपूर्ण है। जीवन

अतृप्त होकर भी तृप्ति की जिन बूंदों के लिए लालायित था, वे सब आज सहज ही सुलभ हैं।"

सहसा राजकुमार उठ कर खड़ा हो गया। श्वेतपद्मा को अखरा, किन्तु राजकुमार श्वेतपद्मा की भावना को परखते हुए बोला—"प्रिये! अधीर न बनो। चलो हम दोनों वन की उन्मुक्त शान्ति में साथ साथ घूमें। यदि आज की रात मूल्यवान है तो मुक्त-विहार द्वारा उसे अधिक सुखकर बनावें।"

श्वेतपद्मा राजकुमार का सहारा लिये, उठकर चलने लगी और मुस्कराते हुए बोली—"मुझे एकाएक ऐसे लगा जैसे आप रात्रि के समय किसी कार्यवशात् मुझे छोड़ कर जाने वाले हों।"

"छिः पगली!"

श्वेतपद्मा कटाक्ष मारते हुए बोली—"पुरुषों के मन का क्या ठिकाना?"

"देखो श्वेतपद्मा!" कुछ बनाते हुए राजकुमार बोला—"तुम्हारा आक्षेप न्याय युक्त नहीं है। भगवान् न करे, मुझे ऐसी बातों के हेतु दण्ड भी देना पड़े।"

"कैसा दण्ड?" श्वेतपद्मा एक टक देखने लगी—

शृंखलाबद्ध चुम्बनों के होड़ में ठहाका मारते हुए राजकुमार बोला—"ऐसा।"

लज्जा एवं स्मित हास्य की लालिमा में श्वेतपद्मा स्वर्ग-बाला सी सुशोभित हो उठी—शक्तिवान् को ज्ञात हुआ जैसे चन्द्रलोक से सजीव चाँदनी उतर कर उसे धन्य करने आयी हो।

श्वेतपद्मा बोली—"राजकुमार! तुम कितने प्यासे हो? देखो, मेरे होठों में रक्त आ गया है किन्तु तुम्हारे चुम्बनों में महान् अतृप्ति का सङ्केत है।"

जैसे राजकुमार ने कुछ सुना ही नहीं, वह पुनः प्रेम-चिह्नों के साथ वासना का उद्गार प्रकट करते हुए बोला—"प्रिये! शारीरिक मिलन की प्रमथन शील वासना की तृप्ति के पश्चात् आत्मिक मिलन की मधुर झाँकी के दर्शन होते हैं। मेरी रम्भा! पीने दो, होठों में भरे हुए उस मादक पेय को!

गुलाब की पंखड़ियों का सारा मधु तुम्हारे होठ और कपोलों में भरा हुआ है। आज की रात मुक्त मिलन का वरदान लेकर आयी हो। तुम भी लज्जा का आवरण लपेटे हुए अपनी प्यास बुझाओ और मुझे भी पी पीकर प्यासा बनने दो।"

उस समय श्वेतपद्मा कुछ न बोली किन्तु उसे ज्ञात हुआ जैसे राजकुमार सचमुच, उसके मिलन की उत्कट आकांक्षा लिए ही उन वनों में भटकता रहा हो।

इसी भांति वे युगुल प्राणी वन में विहार करते हुए, अपने चिर व्यथित हृदय की वियोग पीड़ा से विस्मृत बन कर, घूमते फिरते जब थक गये तो वे शयन-कुटी की ओर लौटे। दोनों को अपना पराया कुछ सूझ न रहा था। वे एक दूसरे के गले एवं कटि में हाथ डाले हुए स्वच्छन्द चल रहे थे।

सहसा राजकुमार को पत्तों की खरखराहट में किसी अन्य के चलने की पद-ध्वनि सुनायी पड़ी। उसने पीछे घूम कर देखा तो मधुगन्धा वृक्षों की ओट में छिपने का असफल प्रयत्न कर रही थी। श्वेतपद्मा भी पति के साथ ही पीछे घूम गयी और उसकी भी उचटती हुई दृष्टि मधुगन्धा के श्वेतसाड़ी पर जा टकरायी। कुछ लज्जित होते हुए धीमे स्वर में श्वेतपद्मा बोली--"यह तो मधुगन्धा सी ज्ञात होती है? क्या वह हम दोनों के एकान्त मिलन को देखने तो नहीं आयी। अन्यथा इस प्रकार छिपना तो सन्देह पूर्ण है।"

राजकुमार मधुगन्धा की ओर ही देखता हुआ बोला--"मेरा भी यही अनुमान है। चाहे वह मेरी खोज में ही निकली हो, किन्तु वह हम दोनों के विहार को देख, अवश्य, रही होगी।"

श्वेतपद्मा राजकुमार से दूर हट कर खड़ी हो गयी और राजकुमार ने मधुगन्धा को पुकारा। विवश होकर वह राजकुमार के समीप आकर खड़ी हो गयी। उसने झेंपी दृष्टि से राजकुमार को देखा किन्तु बाद में श्वेतपद्मा पर जाकर उसकी दृष्टि गड़ गयी। श्वेतपद्मा ने भी उस अनिन्द्य सुन्दरी को देखा। मन ही मन दोनों एक दूसरे के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई

चुर रहीं। मधुगन्धा राजकुमार को अपनी ओर देखते हुए जान कर पुनः श्वेतपद्मा को देखने लगी।

राजकुमार मीठे वचनों में बोला—"अकेले इतनी रात बीते क्यों घूम रही हो, मधुगन्धा !"

"क्या करूँ तो महाराज ! कहीं मन को शान्ति नहीं मिल रही है।"

"क्यों ? अशान्ति का कारण ?"

"मेरे कर्म और उनकी पापमयी विभीषिका।"

हतप्रभ दृष्टि से मधुगन्धा प्रत्युत्तर देकर चुप हो गयी। राजकुमार कुछ क्षणों तक मन ही मन किसी विचार को गुनता रहा। पश्चात् श्वेतपद्मा से बोला—"प्रिये ! क्या तुम इस बेचारी स्त्री को अपनी मीठी बातों से बहला सकती हो ?"

"क्यों नहीं आर्य ! मैं अवश्य आज्ञा पालन करूँगी। किन्तु इससे भी पूर्व मुझे इनके परिचय से अवगत कराइये।"

"यह मधुगन्धा पुरी की प्रसिद्ध गायन वाद्य एवं नृत्य-कला की सर्वश्रेष्ठ विदुषी हैं। इनका नाम भी मधुगन्धा है। कुछ दिनों से यह भी इसी आश्रम में आ कर एकान्त निवास कर रही हैं।"

"अच्छा, मैं समझ गयी" श्वेतपद्मा बोली और पुनः नम्रतापूर्वक मधुगन्धा के अभिवादन का प्रत्युत्तर देती हुई बोली—"बहिन ! तुम तो स्वयं दूसरों के अशान्त मन को मधुर रागिनी की आकुल मूर्च्छना में विह्वल कर देती हो। फिर अपनी अशान्ति नहीं दूर कर पाती ?"

"नहीं, महारानी जी !" सूखी हंसी में मुसकुराती हुई मधुगन्धा बोली।

राजकुमार दोनों के पास से कुछ दूर चल कर विकसित वन-पुष्पों को निस्तब्ध रात्रि की निर्मल चांदनी में मुसकुराते हुए देखने लगा।

श्वेतपद्मा इस "महारानी जी" के सम्बोधन से कुछ लज्जित सी हो गयी और अपने आप अपना परिचय देते हुए बोली—"बहिन ! मुझे 'महारानी जी' न कहिए। मैं तो ऋषिपुत्री हूँ।"

श्वेतपद्मा की इस नम्रता को देख कर मधुगन्धा को आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि सचमुच एक सिंहासन की भावी साम्राज्ञी अत्यन्त सरल

एवं प्रतिष्ठा के अहङ्कार से शून्य हैं। मधुगन्धा अपनी अशान्ति भूल गयी श्वेतपद्मा के साथ संभाषण करते हुए ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे दो सजीव चन्द्रिकाएँ मानवी स्वरूप धारण कर खड़ी हों, एक निष्कलङ्क, दूसरी सकलङ्क।

राजकुमार दूर खड़ा हुआ मन ही मन सोचता—"यदि दोनों आपस में आन्तरिक मैत्री के बन्धन में जकड़ जाने पावें तो कितना अच्छा हो। किन्तु यह कैसे संभव है? एक नर्तकी और दूसरी ऋषि-पुत्री। एक राज-सिंहासन एवं जनता के प्रेम की अधिकारिणी तो दूसरी सामाजिक घृणा की प्रतिमूर्ति एवं नैतिक स्तर से च्युत।

मधुगन्धा बोली—"देवि! आप "महारानी जी" कहलाना चाहे अप्रिय ही समझें किन्तु आपके पद की महत्ता किसी न किसी शब्द में अवश्य व्यक्त की जायगी। मेरी समझ में "महारानी जी" कहलाने में आपको आपत्ति न प्रकट करना चाहिए।"

हंसते हुए श्वेतपद्मा बोली—"आपका कहना यथार्थ है किन्तु अभी राजकुमार राज-पद पर आसीन नहीं है और फिर इस वन में कौन जानता है कि वे भावी राजा हैं, इसलिए बहन! तुम मेरा नाम ले कर भी पुकार सकती हो।"

"यह कैसे संभव है। महारानी-पद तो आपके भाग्य की अमिट रेखा में अङ्कित है।"

खिलखिला कर मधुगन्धा हँस पड़ी और श्वेतपद्मा अर्द्ध-स्मित मुद्रा में मधुगन्धा को देखती रही। श्वेतपद्मा को ज्ञात हुआ कि प्रसन्न रहने पर मधुगन्धा का सौन्दर्य दर्शनीय रूप में विकसित होता है।

सम्भाषण के क्रम को बदलते हुए श्वेतपद्मा बोली—"बहिन! तुम्हें क्या दुख है?"

मधुगन्धा मन ही मन एक आह भरते हुए प्रकट में बोली—"देवि, क्या बताऊँ? इच्छा तो यही होती है कि अपना आन्तरिक उद्गार प्रकट कर पल भर के लिए शान्त कर लूं किन्तु मुझ में यह शक्ति नहीं कि अपनी वेदना प्रकट करूँ।"

"ऐसी क्या बात है, मधुगन्धा ?" श्वेतपद्मा पुनः बोली।

"बात तो बड़ी भयावह है। यदि उसे उच्चारण कर दूँ तो संभवतः संसार भर की घृणा मुझे अपनी ठोकरों से जीवित न रहने दे। हाँ इस रहस्य को राजकुमार स्वयं जानते हैं।"

राजकुमार पुनः उन दोनों के बीच आ कर खड़ा हो गया। श्वेतपद्मा बोली—"बहिन! आधी रात व्यतीत हो चुकी है फिर भी मेरे जीवन में आज के दिन का अधिक महत्व है। इस हेतु हम सब आश्रम में चल कर तुम्हारे सङ्गीत की मादक लहरियों से अपनी तृप्ति चाहते हैं और इस प्रकार तुम्हारा भी मनोरञ्जन होगा।"

राजकुमार के नेत्र चमक उठे। वह भी प्रसन्नता प्रकट करता हुआ बोला—"प्रिये! तुम्हारी यह सूझ बहुत अच्छी है। मेरे मित्र योगिराज भी आज के महोत्सव में बड़े प्रसन्न हैं। चल कर उन्हें भी बुलाया जाय।"

राजकुमार और श्वेतपद्मा के आग्रह से मधुगन्धा भी महोत्सव की खुशियाँ मनाने के लिए कली सी खिल उठी।

शुभ्र चांदनी में आश्रम के सारे व्यक्ति एकत्रित हो गये। योगिराज भी आ कर बैठ गया। मधुगन्धा भी अपनी दृष्टि के सामने प्रियतम को प्राप्त कर कृतकृत्य हो उठी। जिसे वह प्यार करने चली है, उससे वह कितनी दूर है? और श्वेतपद्मा उस पर किस भाँति अपना अधिकार फैला चुकी है। यह सब देख कर पीड़ा और हर्ष के द्वन्द्व में मधुगन्धा स्वयं मचल पड़ी। उसकी वीणा के तार झनझना उठे। नीलकण्ठ मृदङ्ग पर गम्भीर घोष करता हुआ वन-स्थली की शान्ति को भङ्ग करने लगा। सभी हर्षोत्फुल्ल एवं मधुर हास्य युक्त मनः स्थिति को ले कर तारों से उठने वाली मीड़ के मूर्च्छनामय मादक स्वर में निमग्न हो गये। अपनी सम्पूर्ण कलात्मक भावनाओं के प्रदर्शन के साथ साथ मधुगन्धा स्वयं अपनी पीड़ा में गड़ कर किन्तु हास्य के साथ गा उठी—

"साजन ! आज सोहाग की रात ।
पिया मिलन की आस लगाये पुलकित जीवन गात ।। साजन०
नवल-नवेली सुखद छबीली चली त्याग पितु मात ।
घूँघट पट के ओट निरखती चाल चलत इठलात ।। साजन०
दरस पियासे तेरे नैना छन छन क्यों अकुलात ।
आली पीतम रीझे तोपै करें नेह की बात ।। साजन०

मधुगन्धा ने प्रथम गायन में दो घड़ी बिता दी । रात्रि का अन्तिम प्रहर आने ही वाला था । शक्तिवान रीझा हुआ सा कभी मधुगन्धा को और कभी कनखियों से श्वेतपद्मा को देख लेता था । वाद्य यंत्रों की झङ्कार रुकते ही कुछ क्षणों के लिए मृत्यु की सी शान्ति छा गयी किन्तु नीरवता भङ्ग करते हुए योगिराज बोला—"सचमुच, मधुगन्धा ! तुम धन्य हो ! तुम अपनी पुकार से भगवान को सजग कर सकती हो । तुम्हारी वाणी में अमृत घुला है !"

मधुगन्धा भी आज बहुत दिनों में प्रसन्न दीख पड़ी थी । अपनी प्रशंसा सुन कर विनम्र स्वर में बोली—"आज के सङ्गीत की मिठास मेरी वाणी की नहीं ।"

"तब, किसकी है ?" शक्तिवान पूछ बैठा ।

मुसकुराते हुए श्वेतपद्मा बोली—"सोहाग के रात की ।"

सब लोग ठहाका मार कर हँस पड़े । मधुगन्धा ने देखा कि श्वेतपद्मा व्यवहार कुशल एवं विनोदी प्रकृति की है । अस्तु, वह बोली—"अवश्य, महारानीजी ! सोहाग के रात की ही मिठास है !"

श्वेतपद्मा कुछ लज्जित सी हुई और योगिराज एवं शक्तिवान उसके लिए यह संबोधन सुन कर मुसकुरा पड़े । दास दासी एवं वनवासी जन भी इस प्रसङ्ग को लेकर हंसने हंसाने लगे । मधुगन्धा ने वीणा को भूमि पर रखते हुए कहा—"उचित है कि राजकुमार शयन करने जावें । रात्रि बहुत थोड़ी है, अन्यथा, सब को "महारानीजी" का कोपभाजन बनना पड़ेगा ।"

एक बार पुनः सारा आश्रम विनोदपूर्ण हास्य से गूँज उठा । पश्चात्

एक दूसरे से अभिवादन करते हुए सब लोग शयन करने चल पड़े। मधुगन्धा ने श्वेतपद्मा को बड़ी विनम्रता से अभिवादन करते हुए कहा—"विनोद के समय यदि मुझसे अनुचित बात निकल गयी हो तो मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ, देवि !"

प्रत्युत्तर में श्वेतपद्मा मुसकुरा पड़ी। सब लोग अपनी अपनी कुटी में जा पहुँचे।

प्रीतम सङ्ग शयन करते समय श्वेतपद्मा मन ही मन कह उठी, "सौभाग्य शालिनी, आज की यामिनी ! धन्य ! संस्कार पूर्ण प्रीतम के एकान्त मिलन की रात्रि !! आज तुम्हारे संयोग से जीवन कृतकृत्य है।"

× × × ×

राजा मलयसेन की अचानक मृत्यु के साथ ही सेनापति की मृत्यु का एक रहस्यपूर्ण समाचार प्रेम-नगर की जनता में फैल गया। एक समाचार था कि दोनों ही मधुगन्धा के प्रेमी थे। वे मधुगन्धा द्वारा ही मारे गये हैं। इस अचानक मृत्यु के अन्तर्गत कोई भेद छिपा है। दूसरी जन-श्रुति यह थी कि दोनों निराश प्रेमी होने के कारण स्वत: ही आत्महत्या कर बैठे हैं। कुछ कहते—"मधुगन्धा इस नगर की सीमा पार कर चुकी है। हत्या करने या अन्य किसी षडयंत्र के कारण मारे जाने की विचार-धारा भी अनुचित ज्ञात होती है क्योंकि इस प्रकार की घटना घटित होने का कोई पूर्व अनुमान भी नहीं है। जो कुछ हो।

राज्य की ओर से हत्याकारी की खोज प्रारम्भ हो गयी। चारों ओर बात की बात में राजा और सेनापति की मृत्यु का समाचार पहुँच गया। राज्यप्रमुख मंत्री की आज्ञा से शोक मनाने के हेतु नगर के सारे व्यापार बन्द कर दिये गये किन्तु सच बात तो यह कि इन दोनों की मृत्यु से प्रजा को तनिक भी दुख न हुआ, उलटे छुप कर प्रजा ने कहना प्रारम्भ किया कि सौभाग्य से हम लोगों के अच्छे दिन आ रहे हैं। इसलिए राजा मलयसेन एवं सेनापति की मृत्यु अच्छे दिनों के पूर्वागमनकी सूचना है।

राजनैतिक विचार धारा वाले नागरिक दूसरी ही गुत्थी में उलझे हुए थे। वे चाहते थे कि मलयसेन की मृत्यु के साथ ही एकतंत्र-वाद की शासन प्रणाली भी समाप्त हो।

कुछ कहते, "अभी राजकुमार शक्तिवान् उत्तराधिकारी हैं। वह उदार एवं प्रजा-सेवक है इस हेतु, सिंहासन की आज्ञा प्राप्त करने के लिए उन्हें राज-पद पर आसीन किया जाय और प्रजा-राज्य की घोषणा के साथ ही मौलिक स्थिति का ध्यान रखते हुए, प्रजातंत्र के विधान की श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा रचना करायी जाय।"

अन्त में प्रजा की इच्छाओं की जानकारी के पश्चात् प्रधान मंत्री ने राजा मलयसेन एवं सेनापति की अन्त्येष्टि-क्रिया करने की आज्ञा प्रदान कर दी और राजकुमार शक्तिवान् की खोज में चारों ओर योग्य चर भेज दिये।

गुप्तचरों ने पांचवें दिन राजकुमार का वास-स्थान ढूंढ़ निकाला। वे सब के सब अभिवादन करते हुए राजकुमार शक्तिवान की सेवा में उपस्थित हुए और प्रधान-मंत्री की ओर से पत्र-समर्पित करते हुए बोले—"देव! आपको मेरे साथ ही चलना चाहिए। प्रेम नगर की प्रजा आपके शुभ राजतिलकोत्सव की प्रतीक्षा में व्यग्र है। राज सिंहासन सूना है। प्रधान मंत्री स्वयं आपके बिना शासन-यंत्र चलाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। हमलोग (सत्ता और प्रजा दोनों पक्षों) ने आपके राजतिलक का करने शुभ निर्णय कर डाला है। अस्तु देव! आप पधारें और त्रस्त एवं पीड़ित प्रेम नगर की प्रजा को अपने न्यायपूर्ण उदार शासन द्वारा कृतकृत्य करें।"

राजकुमार मुस्कराया किन्तु उत्तरदायित्व पूर्ण भाषा में बोला—"प्रिय प्रेम नगर वासियों! यदि तुम्हें मेरे शासन में सुख-समृद्धि की आशा हो तो अवश्य मेरा स्वागत करो, अन्यथा, जाओ। मैं अपने पिता के तुल्य शासक बनने की भावना को त्याग चुका हूँ। मैं अपने सुखों और शक्ति के लिये हुए विशेषाधिकारों का दुरुपयोग नहीं करना चाहता। मेरी राय तो यह है कि एक बार पुनः प्रेमनगर की जनता को आमंत्रित कर शासन-सञ्चालन के सम्बन्ध में निर्णय कर लिया जाय कि सारी जनता कैसा विधान और कैसी व्यवस्था चाहती है। यदि प्रजा-राज्य स्थापित करते हुए भी मेरी आवश्यकता प्रजा को होगी तो मैं अवश्य अपनी सेवाओं द्वारा जीवन को कृतकृत्य करने के सङ्कल्प में दृढ़ हूँ।"

प्रधान दूत बोला—"देव ! ऐसा निर्णय होने के पश्चात् ही हमें आपकी खोज में भेजा गया है।"

"ठीक है, किन्तु यह निर्णय पिता जी की मृत्यु के पश्चात् बड़ी शीघ्रता में किया गया है। मैं सारी जनता का निर्णय जानना चाहता हूँ जो अल्प-काल में संभव नहीं।"

राजकुमार प्रधान मंत्री को इसी आशय का पत्र लिखता हुआ बोला—"तुम सब मेरे पत्र के साथ लौट जाओ। मैंने प्रधान मंत्री को आवश्यक निर्णयों के सम्बन्ध में लिख दिया है। दूसरी विशेष बात यह है कि मैं विवाहित हूँ। मेरा प्रणय सम्बन्ध वन की एक ऋषि-पुत्री के साथ हो चुका है। क्या प्रेम नगर की जनता को मेरे इस विवाह पर कोई आपत्ति तो न होगी ? ये सारी बातें हैं जिनके निर्णय के पश्चात् मैं प्रेम नगर जा सकूंगा।"

दूतों ने राजकुमार की आज्ञा का सहर्ष पालन करना अपना कर्तव्य समझा। इस हेतु प्रधान दूत बोला—"देव ! मैं आज्ञानुकूल प्रेम नगर लौटा जा रहा हूँ किन्तु एक विनीत प्रार्थना है।"

"वह क्या ?" शक्तिवान् बोला।

"कहीं वास स्थान परिवर्तन कर दूर निवास करने की आकांक्षा से यदि देव पधारेंगे तो प्रेम नगर की जनता को आन्तरिक कष्ट होगा।"

"नहीं, नहीं" राजकुमार बोला, "ऐसी आशङ्का मत करो। पिताजी की मृत्यु जानकर मुझे स्वयं ही प्रेम नगर एवं वहाँ की चिन्ता है।"

दूत अभिवादन करते हुए लौट चले। बात की बात में सारे आश्रम में राजकुमार के लौट जाने की चर्चा सुनायी पड़ने लगी। योगिराज और श्वेतपद्मा चल कर इस सुखद-सन्देश को सुनने के लिए बढ़े। दूतों ने संक्षेप में बतलाते हुए अपना रास्ता लिया। ये दोनों एवं अन्य आश्रम-वासी राजकुमार को घेर कर सारी बातों के जानकारी की, उत्कण्ठा प्रकट की। शक्तिवान् ने प्रधान मंत्री का पत्र योगिराज को दे दिया। योगिराज पत्र पढ़ कर बोला—"अवश्य ही राजकुमार को शीघ्र प्रेम नगर जाना पड़ेगा और वहाँ जाकर आप "महाराज" बनेंगे।"

सन्देशे को सुन कर सभी लोग प्रसन्नता से खिल उठे। श्वेतपद्मा ने कनखियों से शक्तिवान् को देखना चाहा किन्तु उसने देखा कि शक्तिवान् स्मित-मुद्रा में न जाने कब से श्वेतपद्मा को देख रहा है। उसकी दृष्टि में एक गोपनीय रहस्य नाच रहा है जिसे वह प्रकट करने के लिए व्यग्र है।

श्वेतपद्मा की दृष्टि नीचे झुक गयी। उसे याद आया वह दिन जब उसने राजकुमार से कहा था "मैं रानी बनूंगी'''' ।" राजकुमार जैसे प्रेम-प्यासी दृष्टि से श्वेतपद्मा को देख कर मूक वाणी में कह रहा था, "रहस्य मयी नारी! आओ, फिर तुम्हें प्यार करें और तुम्हारी रानी बनने की कामना को सफल करें।"

श्वेतपद्मा ने दृष्टि उठा कर जो पुनः पति की ओर देखा तो इस बार वह खिलखिला कर हँस पड़ी। राजकुमार भी अन्तर्भाव समझ गया। इस कारण वह भी हंसते हुए बोला—"भद्रे! अपने आनन्द में मुझे भी हिस्सा दो। क्या बात है जो खिलखिला कर हंस रही हो और प्रसन्नता बिखरी पड़ती है।"

"आप स्वयं हँसाये जा रहे हैं, इसलिए मैं हँस रही हूँ।"

"तो क्या मेरे मुँह में हँसी लटक रही है।"

"अवश्य।"

प्रिया का इतना निर्मल हास्य देख कर शक्तिवान् प्रफुल्लित हो उठा। वह सब को उसी अवस्था में छोड़कर मधुगन्धा की कुटी में पहुँच गया और बोला—"मधुगन्धा! तुम आज इस आश्रम को त्याग दो। मुझे प्रेम नगर के दूत बुलाने आ चुके हैं, उधर तुम्हें बन्दी बनाने की आज्ञा भी प्रेम नगर की प्रमुख कार्य-कारिणी के सचिवालय से निकल चुकी है अतएव तुम अपने नगर जाओ। मैं शीघ्र ही तुम्हें बुलाने का प्रयत्न करूँगा साथ ही हत्या का जो अपराध तुम पर लगाया जा रहा है, उसे गलत करने की चेष्टा करता रहूँगा।"

मधुगन्धा राजकुमार की बात सुनकर स्तब्ध रह गयी। वह कुछ डरते हुए बोली—"यदि मधुगन्धा पुरी के राजा से प्रेम नगर की सचिव सभा

ने मेरी मांग की तो वहाँ भी मैं बन्दिनी बनायी जा सकूँगी ? फिर मेरे जीवन की रक्षा कैसे संभव हो सकेगी।"

"घबड़ाओ नहीं मधुगन्धा ! तुम्हारे जीवन पर कोई आपत्ति न आयेगी हत्या का सारा दोष मैं अपने शीश पर ले लूंगा किन्तु अभी थोड़े दिनों के लिए अवश्य सावधानी बरतनी पड़ेगी।"

आंसुओं की बूँदें ढालते हुए मधुगन्धा बोली—"राजकुमार ! जिस सुख की आशा से मैंने इतना घोर हत्या का पाप स्वीकार किया, ज्ञात होता है, वह सुख मेरे लिए असंभव है। हाय ! अब तो मैं तुम्हारे सुखद-दर्शन से भी वञ्चित रहूँगी।"

"नहीं, मधुगन्धा ! मैं स्वयं तुम्हें लेने मधुगन्धापुरी आऊँगा !" एकाएक नवीन आशा से मधुगन्धा की दृष्टि चमक उठी। उसने मन ही मन सोचा—"यही वह राजकुमार है जो लाखों प्रार्थनाओं पर भी मेरे गृह जाने को अस्वीकार कर रहा था।"

प्रकट में मधुगन्धा बोली—"क्या आप की बातें सच मानूं ? आशा तो नहीं होती कि आप मेरे गृह आवेंगे।"

दृढ़ता के साथ राजकुमार बोला—"मैं अवश्य आऊँगा।"

मधुगन्धा को इस बार विश्वास हो आया किन्तु वह मन ही मन बोली "विरह तो प्रतिक्षण जलाया ही करेगा ! किस मधुरिमा की कल्पना में वियोग के दिन व्यतीत होंगे ......।"

मधुगन्धा कुछ सोच रही थी। अचानक उस दुस्साहसी रमणी ने शक्तिवान के गले में अपनी बाहें डाल दीं और धृष्टता करती हुई शक्तिवान की दृष्टि बचा कर उसे चूम लिया। राजकुमार ज्यों का त्यों मुसकुराता रहा। दूसरे ही क्षण मधुगन्धा की दृष्टि नीचे झुक गयी जैसे उसने बलात् डांका डाला हो।

मधुगन्धा चुप थी किन्तु राजकुमार का सुखद स्पर्श एवं मधुर चुम्बन प्राणों में घोर अभाव की पीड़ा का सञ्चार कर रही थी। वह वियोग के उस क्षण को डर रही थी जब कि वह राजकुमार से ओझल हो जायगी।

शक्तिवान एक उदार प्रेमी की भाँति मधुगन्धा को बहला कर विदा करना

चाहता था, उपेक्षा अथवा दुखा कर नहीं। वह उसी मुसकुराहट में बोला—"ओस चाट कर प्यास बुझाना व्यर्थ है किन्तु मधुगन्धा। तुम्हारी प्रीति के लिए मैंने ऐसा भी होने दिया है। लज्जित न होओ। चलो, यात्रा की शीघ्र तैयारी कर डालो।"

शक्तिवान के इस सद्व्यवहार से मधुगन्धा का आन्तरिक बोझ हलका हो गया। वह नीचे दृष्टि किये क्षमा-याचना सी करती हुई बोली—"क्या करूँ, देव! मैं क्षुद्र नारी हूँ। जीवन के महान आकर्षण के सामने पराजित हूँ। तुम्हारा एक मधुर चुम्बन और उसकी प्राप्ति मेरे हेतु महान वरदान है। अब जो बीतेगी, उसे झेल जाऊँगी। धन्य हूँ मैं! आपने अपने उदार व्यवहार द्वारा मुझे कृत-कृत्य कर दिया।"

राजकुमार बोला—"अच्छा मैं अपनी कुटी में हूँ। तुम शीघ्र प्रस्थान करने के लिए तैयार हो जाओ।"

राजकुमार चला गया और मधुगन्धा ने शशि, नीलकण्ठ एवं अन्य दास दासियों को मधुगन्धापुरी जाने की सूचना देकर स्वयं दैनिक कार्यों से निवृत्त होने चली। दो घड़ी के भीतर ही मधुगन्धा अपने दास दासियों सहित चलने लगी। सामने मैदान में उसका श्री सम्पन्न हेम यान चमकने लगा। छोटे बड़े सब एक दूसरे से मिलने लगे। योगिराज और श्वेतपद्मा रहस्यपूर्ण मुद्रा में सब कुछ देखते रहे।

सब से मिलने के पश्चात् मधुगन्धा चल कर श्वेतपद्मा के निकट खड़ी हो गयी और हृदयालिङ्गन करते हुए श्वेतपद्मा से बोली—"देवि! आपका मधुर सहवास त्याग कर जाना महान् कष्टदायक है।"

"तब क्यों जाती हो, मधुगन्धा!" कुछ दुखित होकर श्वेतपद्मा बोली।

"कार्य कारण ही ऐसा है, महारानी जी!"

मधुगन्धा की आँखों में आँसू भर आये, गला रुंध गया, वह एक शब्द भी न बोल सकी। झुक कर श्वेतपद्मा के चरण स्पर्श करती हुई बोली—"मुझे न भूलिएगा और समय समय पर राजकुमार को मेरा ध्यान दिला दिया कीजिएगा! और क्या कहूँ? भूल-चूक के लिए क्षमा-प्रार्थिनी हूँ।"

सारा आश्रम मधुगन्धा की इस मिलन-पूर्ण विदा से उदास सा हो चला। मधुगन्धा की अनिश्चित यात्रा सब को दुखद प्रतीत हुई। श्वेतपद्मा से मिलने के पश्चात् वह अपने हंसयान पर आकर आरूढ़ हो गयी। उसका रथ चल पड़ा। राजकुमार को दृष्टि से ओझल होते देख उसका अन्तर चीत्कार कर उठा। वह बड़ी २ बूंदों में रोती हुई राजकुमार को अपलक दृष्टि से देखती रही। जैसे ही राजकुमार दृष्टि-पथ से विलीन हुआ, मधुगन्धा रथ पर गिर पड़ी।

× × ×

राजकुमार शक्तिवान मधुगन्धा को विदा कर आश्रम में शून्य भाव से आ कर बैठ गया। मधुगन्धा के जाने के पश्चात् सम्पूर्ण आश्रम में रहस्यमय सूनापन सा बोध होने लगा। शक्तिवान्, श्वेतपद्मा, योगिराज एवं अन्य दास दासियों को बोध हुआ जैसे उनके बीच से जीवन का सहज आकर्षणमय आनन्द छिन गया हो। यह सब क्या था। मधुगन्धा का सहज आकर्षणमय स्वभाव, जिसके वियोग ने आश्रम का सुखमय वातावरण घोर उदासीनता में परिवर्तित कर दिया था!

कुछ ही क्षणों पश्चात्, जीवन के प्रति सजग प्रहरी की भाँति प्रेरणा देने वाला शक्तिवान का अनन्य मित्र योगिराज उसके अन्तर को स्पर्श करते हुए कह उठा—राजकुमार! संयोग वियोग के धूपछांह में एक क्षण के लिए भी जीवन के महान् कर्तव्य भुलाये नहीं जा सकते। अस्तु राजकुमार! मधुगन्धा की ओर से ध्यान हटा कर उन विचारों को चैतन्य करो जिनके द्वारा प्रेमनगर की चिरशोषित, संत्रस्त एवं अव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने वाली प्रजा का सुखमय उज्ज्वल भविष्य का सर्वोदय आरम्भ समारम्भ हो। स्वस्थ शासन का सूत्रपात ही तुम्हें अक्षयकीर्ति का भागी बनायेगा।

राजकुमार शक्तिवान ने अपने मित्र योगिराज की सदुपदेशमयी वाणी एवं मंत्रणा को सुन कर एकाएक मधुगन्धा की ओर से बलात् अपना ध्यान खींच लिया और भावी उत्तरदायित्व के वहन करने की शक्ति को अपने आप में ही संचारित करने लगा।

इधर श्वेतपद्मा अपने उज्वल भविष्य की कल्पना के मूर्तरूप को प्राप्त करते देख कर अपने पिता श्रीवत्स द्वारा प्राप्त उन शिक्षाओं के चैतन्य उद्‌बोधन में भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने बैठी जिन दैवी गुणों के सहारे द्वन्द्वात्मक भावनाएँ आन्तरिक समता को प्रकम्पित नहीं कर सकती।

वह अपने पति शक्तिवान के साथ अनेक प्रकार से आभ्यन्तरिक शुद्धि के लिए व्रत उपवासादि कर्मों में निरत रहने लगी और वैदिक मंत्रों द्वारा योगिराज प्रजा-सत्ता के विशिष्ट अङ्गों का वर्णन करते हुए वर्तमान युग के साथ उनका मेल कराने लगा।

इस प्रकार केवल एक सप्ताह व्यतीत हुए थे कि सहसा आश्रम से दूर कोलाहल मय वातावरण में भाँति २ के वाद्य यंत्रों से सारा वन उपवन गुञ्जरित हो उठा।

शक्तिवान, योगिराज एवं श्वेतपद्मा को शीघ्र विदित हो गया कि उन्हीं के स्वागतार्थ प्रेमनगर की जनता सेना आदि के साथ राजकुमार शक्तिवान को लेने आयी है।

आगे सुवर्ण एवं रत्नजटित महायान चल रहे थे जिन्हें अलङ्कृत एवं सुसज्जित अश्वारोहियों के समूह खींच रहे थे और उसके पीछे मंत्रीगण, प्रमुख, सामन्त वर्ग-नगरवासी एवं ग्रामवासी जनता की अपार भीड़ गंभीर गर्जन तर्जन के साथ अपने निर्वासित राजकुमार के शुभ-दर्शन के लिए आगे बढ़ रहे थे।

शक्तिवान को यह आशा न थी कि उसके शुभागमन एवं स्वागत के लिए सम्पूर्ण प्रेम नगर की जनता प्रेमोन्मुख होकर इस प्रकार उसके आश्रम तक आ पहुँचेगी। शक्तिवान् अपने साथ श्वेतपद्मा एवं योगिराज तथा अन्य वन-सेवकों को साथ लेकर कृतज्ञ भाव से बिछुड़े हुए नागरिकों को श्रद्धापूर्वक भेंट करने के लिए आगे बढ़ चले।

बड़ा ही हृदयग्राही एवं अन्तर की श्रद्धा एवं सहज प्रेम को लुभाने वाला यह सुखद मिलन था—ठीक चिर-विरह-व्यथित भरत की भांति प्रेम नगर की जनता आनन्दाश्रु भरे पहाड़ों की निर्जन गोद में विहार करने वाले राजकुमार की दर्शन लालसा के मधुर उमङ्ग में आगे बढ़ती आ रही थी।

जैसे ही जनता की प्रथम दृष्टि राजकुमार शक्तिवान, योगिराज एवं श्वेतपद्मा पर पड़ी वैसे ही गिरि-शिखरों को स्पर्श करती हुई आशीर्वचनात्मक वाणी गूँज उठी—"शक्तिवान् चिरंजीवी हों।"

बढ़कर राजकुमार ने प्रधान अमात्य से लेकर छोटे-बड़े, कर्मचारी तथा जनता को करबद्ध अभिवादन किया और इतनी दूर चलकर शुभागमन करने के हेतु आभार प्रदर्शित किया।

प्रधान अमात्य ने कुशल क्षेम के पश्चात् राजकुमार को श्वेतपद्मा के पत्नी रूप में ग्रहण करने के शुभ कार्य के लिए बधाई दी और उच्चस्वर में कह उठे—"महारानी श्वेतपद्मा की जय हो। सम्पूर्ण जनता अपनी भावी महारानी का हृदय से स्वागत करती है।"

हेमयान जो साठ अश्वों द्वारा खींचा जाता था सम्पूर्ण राजसी वैभव चमर-छत्र-व्यजन आदि से सुशोभित था। हेमयान पर रक्खे राजसिंहासन पर जैसे ही राजकुमार को बैठने का आग्रह किया गया उसी समय वैदिक मंत्रों एवं शास्त्रीय पद्धति द्वारा मान्य विद्वन्मण्डली एवं प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा वनस्थली ही में राजगद्दी में आसीन होने का शुभ महोत्सव मनाया गया। शत्रुसंहारिणी तोपें शक्तिवान् एवं श्वेतपद्मा के राजसिंहासन पर बैठते ही गरज उठीं। भाँति भाँति के वाद्य यंत्र-आनन्दोल्लास में भर कर मधुर रागिनियों में गा उठे। मंत्री, सेनाध्यक्ष तथा प्रतिष्ठित नागरिकों ने मिलकर उसी वनस्थली में राजकुमार का राज्याभिषेकोत्सव मनाया गया। उस महोत्सव के मनाने के पश्चात् शक्तिवान् राजसिंहासन पर बैठा और उसने सर्वसत्ता-सम्पन्न राजैश्वर्य से युक्त होकर प्रथम राजकीय घोषणा की—"नागरिको!" वह बोला—"राजसिंहासन में प्रतिष्ठित करके जो सम्मान मुझे आपने प्रदान किया उसका मैं आभारी हूँ किन्तु राज्यशासन की एकतंत्रवाद की आवश्यकता नही रह गयी है अतएव मै प्रभुत्वसम्पन्न सम्पूर्ण राज्याधिकार प्रजा प्रतिनिधियों के हाथों समर्पित करने की घोषणा करता हूँ। राज्य के योग्य अधिकारी, विचारक, न्यायनीति विशारद, सुविज्ञ नागरिकों की समिति का शीघ्र ही निर्माण होगा और वह आपको प्रजातंत्रात्मक, विधान प्रदान करेगी और शीघ्र ही नव-निर्वाचन

द्वारा सम्पूर्ण शासन जन प्रतिनिधियों के हाथ में प्रदान कर दिया जावेगा। इस प्रकार एकतंत्र एवं सामन्तवाद समाप्त होकर सम्पूर्ण राज्य में कल्याणकारी जनतंत्र शासन का उदय होगा और मैं प्रजा की धरोहर को जनता के प्रतिनिधियों के हाथों सौंप कर जनता के सेवक की भाँति जो भी उत्तरदायित्व का कार्य प्रदान किया जायगा,--करूँगा। आशा है जनता मेरी इस शुभेच्छा को सफल बनाने में सहायक होगी।"

सम्पूर्ण प्रजा जो युगों से सामन्तवादी शासनव्यवस्था के निर्दय-चक्र में फँस कर पिसती आयी थी प्रथम घोषणा में ही सन्तुष्ट हो गयी और 'शक्तिवान चिरंजीवी हों' के नारे गूंज उठे।

शीघ्र ही प्रधान अमात्य ने लौटने की आज्ञा प्रदान की और तनिक विश्राम के उपरान्त सम्पूर्ण प्रजा के प्रेमदान को स्वीकार करता हुआ शक्तिवान अपनी प्रेयसी एवं धर्मपत्नी श्वेतपद्मा को हेमयान में बिठाये हुए प्रेमनगर की ओर चल पड़ा।

मार्ग में आवश्यकतानुसार विश्रामादि करते हुए सम्पूर्णप्रजा अपने प्रिय अतिथि एवं निर्वासित राजकुमार को राजा के रूप में पा कर धन्य हो उठा। चौथे दिन मार्गश्रम उठाते हुए प्रजा-जन राजधानी में पहुँच गये।

महोत्सवों की धूम सम्पूर्ण नगर ग्राम तथा कस्बों तक में मच गयी। अत्याचारी शासन से दबी हुई प्रजा अपने भविष्य को उज्वल देख कर हर्षोन्मत्त हो उठी। अतीत के दुखद क्षण इतिहास की करुण गाथा बन कर जन-जीवन से दूर हो गये।

× × ×

मधुगन्धा राजकुमार को परित्याग कर अपनी मधुगन्धा नगरी में आयी तो किन्तु जीवन के महान परिवर्तनों को लेकर।

प्रचुर विलास एवं वैभव की गोद में पली मधुगन्धा को अपने जीवन से ही घृणा होने लगी। उसने प्रस्फुटित होते देखा प्रेम का विशुद्ध अङ्कुर जो उन्मादमय जीवन में पहले कभी अनुभव गम्य न था। आज भी वह कुबेर के समान सम्पत्ति की अधीश्वरी थी और अमित भोग विलास की प्रचुर राशि उसके चरणों में लोट रही थी किन्तु प्रेम की प्रथम ज्योतिर्मय

किरण के प्रस्फुटित होते ही मानो अन्तरात्मा गरज कर कहने लगी थी—
छिः मधुगन्धा ! पाप व्यवसाय द्वारा अर्जित सम्पत्ति से प्रेम देवता सन्तुष्ट नहीं हो सकते। तेरे इस अमूल्य कोष की पाई पाई, घृणा प्रवञ्चना पाप एवं सन्ताप की छल पूर्ण कुत्सित व्यापार की कमायी है। जीवनके शुभ कर्मो की उज्ज्वल किरणें जब तक हृदयान्तराल में न झाँकेंगी, तब तक प्रेम-प्रभु के दर्शन दुर्लभ हैं। शक्तिवान जो तेरे लिए प्रेम का अमर देवता बन कर वरदान देने आया है, इस पापपूर्ण व्यवसाय की रंगीली सम्पत्ति से कभी न पसीजेगा। प्रेम की अलख जगाने के लिए प्रियतम की स्मृति के अतिरिक्त सर्वस्व त्याग करना होगा, पतित को पावन बनना पड़ेगा—प्रेम-प्रभू की परितुष्टि के लिए सम्पूर्ण वैभव का परित्याग अत्यावश्यक है।"

भोग उसने बहुत भोगा था। अब भोग भोगने की बलवती इच्छा न जाने कहाँ विलुप्त हो चुकी थी? अब उसे चाहिए था शक्तिवान? किन्तु वह जानती थी कि जहाँ श्वेतपद्मा का पवित्र प्रेमाञ्चल शक्तिवान के जीवन के ऊपर फैला हुआ है वहाँ मायाविनी नर्तकी का अपवित्र प्रेम उसे रिझा नहीं सकता; भले ही आज भी मधुगन्धा रति सी सौन्दर्य शालिनी क्यों न हो। किन्तु वासना के नारकीय कीड़ों ने मधुगन्धा के उन्मादपूर्ण सौन्दर्य को अपनी अपवित्र वासनाओं द्वारा स्पर्श करके अछूत सा बना दिया था अस्तु मधुगन्धा ने पतित-पावन कर्म का समारंभ करने के लिए श्वेतपद्मा के नाम पर विशुद्ध आश्रम की रचना की और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति उक्त आश्रम के नाम पर दान कर दी।

मधुगन्धा ने शीघ्र ही अपनी शुभ आकांक्षा श्वेतपद्मा-योगिराज एवं शक्तिवान के समीप पत्र द्वारा भेज दी—पत्र ले जाने वाली उसी की प्रिय-दासी शशि थी। मधुगन्धा ने श्वेतपद्मा से आग्रह किया था कि उक्त आश्रम का उद्घाटन उसी के द्वारा ही उसी के नाम पर हो और उसी की वैभव-शाली—राजप्रासाद के शिखरों से समता करने वाली कोठी में हो।

मधुगन्धा के इस परिवर्तन एवं सर्वस्व समर्पण को शक्तिवान श्वेतपद्मा एवं योगिराज ने महत्वपूर्ण माना और उसके सम्पूर्ण शुभ विचारों

एवं योजनाओं में हाथ बटाने के लिए योगिराज एवं श्वेतपद्मा ने सक्रिय सहयोग देने का वचन दिया।

एक शुभ तिथि निश्चित की गयी और उसी दिन शक्तिवान योगिराज एवं श्वेतपद्मा शहर के प्रमुख विचारकों एवं विद्वन्मण्डली के साथ प्रेमनगर से रवाना हो गये।

मधुगन्धा ने आश्रम सम्बन्धी विशाल आयोजन कर रक्खा था। दूर दूर से आयी शरणार्थी दलित एवं पतित स्त्रियाँ जिन्हें मधुगन्धा सत्पथचारिणी बनाने का सङ्कल्प ले कर पूर्वकाल से ही संस्कार युक्त जीवन बिताने की प्रेरणा दे रही थी—आगत मेहमानों के स्वागत में हृदय बिछा कर आश्रम को शास्त्र सम्मत एवं विधि-सम्मत बना कर सर्वस्व समर्पण का दान-पत्र महोत्सव के समय श्वेतपद्मा के हाथों प्रदान किया।

संक्षेप में मधुगन्धा ने अपने पापपूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला और अपनी आन्तरिक इच्छा प्रकट की कि मैं चाहती हूँ कि मातृत्व प्रदान करने वाली नारी जाति सर्वाधिक मात्रा में सदाचार एवं नैतिकता को अपनाते हुए राष्ट्र एवं समाज का मुख उज्ज्वल करे।

एक संक्षिप्त दृष्टिकोण श्वेतपद्मा के जीवन पर डालते हुए मधुगन्धा ने बताया कि भारत की नारी का जीवन ऋषि प्रणीत विधान एवं शुभ साहचर्य द्वारा अधिक गौरवमय है। श्वेतपद्मा इसकी प्रमाण हैं—ऋषि-पुत्री हो कर आज राज-राजेश्वरी हैं। उन्होंने नारी की गौरवमय परम्परा की रक्षा की है अतः उन्हीं के निर्देशन में उक्त आश्रम, नारी की बहुमुखी उन्नति करने में अग्रसर होगा।'

श्वेतपद्मा ने अपने ऊपर पड़ने वाले भार को सहर्ष स्वीकार किया उन्होंने योगिराज को सलाहकार एवं मधुगन्धा को सहायिका के रूप में स्वीकार कर-आश्रम द्वारा नैतिक मूल्यों से पूर्ण चरित्रवान गृह-कार्य-दक्ष एवं राष्ट्रीय-जागरण में आदर्श नारी के चरित्र-गठन का राष्ट्रव्यापी कार्य प्रारंभ कर दिया।

❀ इति ❀

मुद्रकः—श्याम[illegible]लाल [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, भैरोनाथ, बनारस।